चौसठ रूसी कविताएँ

सन् १९४३-'६३ म रूपातरित

बच्चन की अन्य रचनाएँ

* 'मधुशाला' का अंग्रेज़ी ('५०) और 'बंगाल का काल' का बँगला ('४८) अनुवाद भी प्रकाशित हो चुका है।

*रचनाओं के साथ प्रथम प्रकाशन तिथि का संकेत है।

राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मूल्य तीन रुपये
पहला संस्करण जनवरी १९६४
प्रकाशक राजपाल एण्ड सन्ज़ दिल्ली
मुद्रक राष्ट्रभाषा प्रिंटर्स, दिल्ली

समर्पण

रामचरितमानस के रूसी रूपांतरकार
अलेक्सेइ बरान्निकोव
की
पुण्य-स्मृति मे
उनके पुत्र और पुत्र-वधू को

अपने पाठकों से

आज आपके हाथों में अपनी एक नई रचना रखते हुए मैं बड़ी प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, यह चौसठ रूसी कविताओं के हिंदी रूपांतर का सकलन है। उनके लेखक हैं उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के चौबीस प्रतिनिधि कवि। संख्या में सब कवियों की रचनाएँ बराबर या लगभग बराबर नहीं रखी गई हैं। पूश्किन की इक्कीस कविताएँ हैं, कई कवियों की केवल एक एक। किसी कवि की एकाधिक अथवा एक ही कविता चुनते हुए भी इस बात का ध्यान रखा गया है कि उनसे अथवा उससे उस कवि की विशिष्टता का प्रतिनिधित्व हो सके। मैं समझता हूँ रूसी कविताओं का ऐसा सकलन हिंदी में इससे पूर्व प्रकाशित नहीं हुआ, और इस कारण काव्य प्रेमी हिंदी पाठकों के लिए यह विशेष आकर्षक होगा।

एक बात मैं प्रारंभ में ही स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैं रूसी भाषा नहीं जानता। भाषाओं में हिंदी के अतिरिक्त मैं अंग्रेज़ी, थोड़ी उर्दू, थोड़ी संस्कृत और बहुत थोड़ी बँगला जानता हूँ। अंग्रेज़ी का ज्ञान मेरे लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है। व्यावहारिक दृष्टि से ही नहीं, भावनात्मक दृष्टि से भी। उसके माध्यम से मैंने ऐसी कई भाषाओं के काव्य का रसास्वादन किया जिन्हें सीखना मेरे लिए इस जीवन में संभव न था। जब मैं सोचता हूँ कि बिना अंग्रेज़ी ज्ञान के मैं होमर, वर्जिल, दांते, गेटे आदि पश्चिमी और कई पूर्वी कवियों के काव्य वैभव से अपरिचित रह जाता तो अंग्रज़ी के प्रति मेरा सिर आभार से झुक जाता है। शायद यही बात मेरे मन में थी जब मैंने लिखा था

"पढता हूँ अग्रजी जिसने द्वार विश्व कविता के खोले"
(आरती और अगारे)

ब्रिटिश म्यूजियम मे अग्रेजी की विपुल अनुवाद-सपत्ति देखकर आश्चय-चकित रह जाना पडता है। अग्रेज जाति के रुचि वैविध्य ने न जाने कितनी भाषाओ की न जान कितनी साहित्यिक निधियो को अग्रेजी के भडार म सचित कर दिया है। रूसी कविताओ का रसास्वादन भी मैंने अग्रेजी अनुवादो के द्वारा किया। इनका हिंदी रूपातर वस्तुत हिंदी अनुवाद-दर-अनुवाद कहा जाना चाहिए—रूसी का अग्रेजी मे, अग्रेजी का हिंदी मे।

अपने विश्वविद्यालय जीवन म रूसी कविता की ओर मेरा ध्यान नही गया। जहा तक मुझे याद है उन दिना इलाहाबाद के विश्वविद्यालय-पुस्तकालय और पब्लिक लाइब्रेरी मे रूसी कविताओ का कोई अग्रेजी अनुवाद उपलब्ध नही था। उन दिना हमारे विशेष आकषण के केंद्र थे रूसी उपन्यासकार तुगनेव, दस्तायेव्स्की तोल्सतोय, बाद को चेखोव और गोर्की। पब्लिक लाइब्रेरी से लेकर ज़ार और ज़ारीना के पत्रा का एक सकलन मैंने अवश्य पढा था जिसम उनके धमगुरु और मित्र रासपुतीन का ज़िक्र बार-बार आता था। उस विचित्र व्यक्तित्व पर मैंने एक बडी पुस्तक बाद को पढी। उन्ही दिना तुगनेव लिखित गद्यकाव्य जसी कोई चीज़ पढन की भी स्मृति है, पर काव्य के नाम से मैंने रूस का कुछ भी नही पढा था।

प्रगतिवादी आदोलन के दिना म रूस और उसके साहित्य का ज़िक्र बार-बार किया जाता था पर साहित्यकार के नाम पर केवल उपन्यासकार गोर्की का नाम लिया जाता था—किसी कवि का नाम नही सुनाई पडता था। बाद को मयाकोव्स्की पर एक किताब अग्रेजी म निकली। यह पाचवें दशक के प्रारभिक वर्षों की बात है। मैं इलाहाबाद युनिवर्सिटी मे अग्रेजी अध्यापक के रूप म नियुक्त हो गया था। हमारे सहयोगी प्रगतिशील श्री प्रकाशचद्र गुप्त ने सभवत उसी पुस्तक के आधार पर मयाकोव्स्की पर एक लेख भी पढा था। पुस्तक मे मयाकोव्स्की की कई कविताओ के अग्रेजी अनुवाद भी थे। कवि म प्रखरता तो थी पर दिव्यता कही नही। विशेष

प्रभावित नहीं हुआ, पर रूसी कविता से मेरा प्रथम परिचय मयाकोव्स्की की रचनाओं के द्वारा ही हुआ। उसने अन्य कवियों के प्रति मेरी जिज्ञासा जगाई पर शांति का कोई उपाय न था।

दूसरे महायुद्ध के वर्षों मे रूस ने जो अदम्य संघर्ष किया उसके कारण वह संसार का आकर्षण-केंद्र बन गया। उन दिनों हिटलर का दबदबा इतना था कि साधारण जनता में ऐसी धारणा थी कि तानाशाही के सामने साम्यवाद टिक नहीं सकेगा। यदि ऐसा होता तो संसार के लिए बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण होता। सच्चाई तो यह है कि हिटलर की ताकत का पहला मज़बूत मुकाबला रूस ने ही किया और वहीं उसकी शक्ति का बहुत बड़ा क्षय हुआ। साम्यवाद एक बड़ी अग्नि-परीक्षा में खरा उतरा। राजनैतिक और सांस्कृतिक दोनों क्षेत्रों मे रूस के आदर्शों के प्रति सहानुभूति जगी और उसके साहित्य और काव्य के लिए कौतूहल बढ़ा।

हिंदी में प्रगतिशील खेमे से रूस का बहुत गुणगान हुआ, गो काव्य-कला के स्तर की उपेक्षा करके, बहुधा उसे गिराकर भी। १९४० '४३ के बीच शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने 'मास्को अब भी दूर है' तथा अन्य कई ओजस्वी कविताएँ लिखीं। मुजफ्फरपुर के कवि 'रमण' ने अपना एक काव्य-संग्रह 'मास्को' (१९४३) के नाम से निकाला, 'दिनकर' ने उसकी भूमिका लिखी। काव्य-कला के प्रति अधिक सचेत कवियों ने भी रूस के साथ अपनी संवेदना को वाणी दी। उन दिनों अपने मानसिक संघर्षों मे बुरी तरह फँसे हुए भी कविवर नरेन्द्र ने लिखा

> रक्त स्वेद से सींच मनुज
> जो नई बेल था रहा उगा,
> बड़े जतन यह बेल बढ़ी थी
> लाल सितारा फूल लगा।
> उस अंकुर पर घात लगी तो
> मेरे आघातों का क्या! (मिट्टी और फूल—१९४२)

युद्धारंभ के वर्ष में प्रकाशित दिनकर का 'हुंकार' 'लाल रंग', 'लाल

शिखा', 'रक्त चन्दन', 'लोहितवसना' की ओर संकेत करता आया था। युद्ध-समाप्ति के वर्ष में उन्होंने 'दिल्ली और मास्को' शीर्षक कविता लिखी और गुलजार 'लाल सितारा वाली लाल भवानी' की जय बोले!

रूस के प्रति मेरी प्रतिक्रिया ने अधिक प्रदर्शन रहित और संयत रूप लिया। मैंने रूस की प्राचीन और अर्वाचीन कविताओं का अध्ययन किया और रूसी मानस एवं भाव जगत को समझने का प्रयत्न किया। मेरे सौभाग्य से १९४३ में सी० एम० बावरा द्वारा संपादित ए बुक आफ रशन वर्स नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। इसमें पूश्किन से लेकर क्रांति-काल तक के कवियों की प्रतिनिधि कविताओं का अंग्रेज़ी अनुवाद प्रस्तुत किया गया था। इसके कुछ महीनों बाद ही एक और पुस्तक मेरे हाथ लगी जेराड शेली द्वारा अनूदित 'माडर्न पोएम्स फ्राम रशा' (१९४२), जिसमें क्रांति-काल के बाद के कवियों की चुनी हुई रचनाएं संकलित की गई थीं। ये दोनों पुस्तकें तब से मेरे पास हैं और रूसी कविता का मेरा यत्किंचित ज्ञान इन्हीं दो संकलनों पर आधारित है। श्री वीर राजेन्द्र ऋषि द्वारा पूश्किन की कविता जिप्सी का मूल रूसी से सीधा हिंदी अनुवाद मैंने १९४९ में देखा और पास्तरनाक की कुछ कविताओं को उनके उपन्यास डाक्टर जिवागो के अंत में १९५९ में और उनकी कुछ और कविताओं को इधर प्रकाशित उनके दो संग्रहों में। यदा कदा रूस की अंग्रेज़ी प्रचार-पत्रिकाओं में आधुनिक रूसी कविता के अनुवाद भी पढ़ता रहा हूं।

अनुवाद कार्य को शब्द-साधना के लिए सुखद अभ्यास के रूप में मैंने बहुत पहले अपना लिया था। विद्यार्थी जीवन में मैंने पाठ्य क्रम में पड़ी कुछ रूमानी कविताओं का अनुवाद किया था—शेली की 'लव्स फिलासफी' की कुछ पंक्तियां शायद अब भी याद हैं

> **निर्झर मिलते हैं नदियों से, नदियों से मिलता सागर,**
> **मिलती है आकाश हवाएँ मधुर भावनाओं से भर,**
> **जगती में कुछ नहीं अकेला पाल सभी यह विश्व नियम**
> **एक दूसरे से मिलते हैं—क्यों न मिलें फिर तुझसे हम ?**

फिटजजेरल्ड के 'रुबाइयात उमर खयाम' का अनुवाद मैंने १९३३ में किया, जो १९३५ में प्रकाशित हुआ, और तब से मेरे गद्य-पद्य अनुवादों की एक शृंखला है जिससे मेरे पाठक अपरिचित नहीं हैं, और जिसकी एक नई कड़ी के रूप में इन रूसी कविताओं का अनुवाद आज आपके सामने है। अंग्रेजी में मेरे शोध के विषय डब्ल्यू० बी० ईट्स की भी कुछ कविताओं का अनुवाद मैंने किया है जो भविष्य में कभी आपके सामने आ सकता है। प्रादेशिक भाषाओं की कुछ कविताओं का रूपांतर भी मैं यदा-कदा करता रहा हूँ।

रूसी कविताओं के अंग्रेजी रूपांतर की बात पहले मेरे मन में नहीं उठी। मैं उन्हें केवल पढ़ता था और उनका रस लेता था। तभी कहीं से यह समाचार मिला कि रूस के प्रसिद्ध विद्वान अलेक्सेइ वरान्निकोव ने तुलसीदास के रामचरितमानस का अनुवाद रूसी भाषा में प्रस्तुत कर दिया है। न जाने किन संस्कारों ने मन को सहसा रूसी भाषा के प्रति बाधित कर दिया—ऋणी बना दिया। क्या यह ऋण हिंदी को किसी अंश में उतारना न चाहिए? शायद रूसी कविताओं के अनुवाद के लिए प्रयत्नशील होने के पीछे यही प्रेरणा काम कर रही थी।

मैंने अपने पास के दो संकलनों में से बहुत-सी कविताओं का अनुवाद कर डाला, और कई १९४५-'४६ में हम (बनारस), 'प्रतीक' (इलाहाबाद), विश्वमित्र' (कलकत्ता), 'सरिता' (दिल्ली), 'मधुकर' (टीकमगढ़) 'नया साहित्य' (बंबई), 'विश्वबंधु और बिजली' (पटना) आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुईं। फिर कभी निजी सृजन का वेग मुझे दूसरी ओर बहा ले गया और मैं अनुवाद की बात बिल्कुल भूल गया।

फिर भी बीच-बीच में मुझे यह ध्यान आता रहा कि कभी मुझे कुछ अच्छी रूसी कविताओं का अनुवाद संकलित करके हिंदी पाठकों के लिए उपलब्ध कराना है।

१९५२-'५४ में इग्लैंड में रहते हुए एक बार मुझे आक्सफर्ड जाने का अवसर मिला। 'ए बुक आफ रशन वर्स' के संपादक सी०एम० बावरा उन दिनों

आक्सफर्ड यूनिवर्सिटी के वाइस चसेलर थे। उनसे मुझे अपने शाध के सबध मे कुछ बात करनी थी। मिलने पर उन्ह मैंने यह भी बताया कि उपर्युक्त पुस्तक मेरे पास है और उसके द्वारा मैंने रूसी कविता का बडा आनद लिया है। लेखक चाहे जितना बडा और चाहे जितना प्रसिद्ध हो, उससे जब कोई अजाना-अपरिचित आकर कहता है कि वह उसकी रचना से परिचित है तो उसको बडी खुशी होती है। बावरा बतान लगे—युद्ध के समय रूस से इग्लड की राजनीतिक मत्री ता हो गई थी, पर साधारण जनता रूस से दूरी का भाव रखती थी अथवा उसके प्रति उदासीन थी। मैंने उन दिनो अपना सकलन इसी ध्येय मे तैयार किया था कि आम लोग रूसी काव्य के वैभव से परिचित हो और इस प्रकार रूस के प्रति काई रागात्मक सबध बनाए। इग्लड की जनता केवल सैन्य शक्ति या सफलता से प्रभावित नही होती, वह यह भी देखती है कि सबल जाति के पीछे कोई सबल सास्कृतिक धरातल भी है कि नही। अग्रेज जमनो से लडते थे पर उनका आदर भी करते थे, क्योकि उनकी जाति कवि, सगीतज्ञ और दाशनिको की जाति है रूसियो के मित्र होन पर भी रूसिया के प्रति कोई आदर का भाव उनमे न था। कारण अजानता थी। मेरी पुस्तक न उसे दूर करने म कुछ योग दिया होगा। युद्ध क दौरान बहुत-सी चीजें रूसी से अग्रेजी मे अनूदित हुइ।

तभी मैंने उनकी पुस्तक से अनुवाद करने और उसे प्रकाशित कराने की अनुमति भी उनसे ल ली। जेराड शेली का पता मुझे नही लग सका।

जिन दिनो मैं केम्ब्रिज मे था उन्ही दिनो श्री देवेन्द्रनाथ शर्मा (अब पटना यूनिवर्सिटी मे हिंदी विभाग के अध्यक्ष) रूसी भाषा म डिप्लोमा के लिए लदन विश्वविद्यालय मे अध्ययन कर रहे थे। जब कभी लदन जाता तो वे मेरा प्रिय भोजन खीर पकाकर मुझे खिलाते और रूसी कविता सुनाते। बदले मे मैं उनको अपनी कविताएँ सुनाता। रूसी मे उन्होने बडी दक्षता प्राप्त की। प्रथम श्रेणी म पास हुए। वे रूसी कविताए बडे उल्लास से सुनाते और उनका अर्थ बताते। मूल रूसी मैंने पहले-पहल उन्ही के मुख से सुनी। एक दिन वे बडे ओजस्वी स्वर म कोई रूसी कविता सुना रहे थे

और जब उन्होंने समाप्त की तो जैसे उसकी प्रतिध्वनि के रूप मे भर्तृहरि की यह पंक्ति मेरे कानो मे गूंज गई—'धिक ता च त च मदन च इमा च मा च'। इसमे संदेह नही कि रूसी शक्तिशाली भाषा है और अगर उसकी समता पश्चिम की कोई भाषा कर सकती है तो केवल पुरानी यूनानी भाषा, पूर्व की, शायद, संस्कृत। रूसी और यूनानी मे ध्वनि-साम्य भी बहुत है। या मुझे ऐसा लगा। केम्ब्रिज मे मुझे किसी प्रोफेसर के मुख से कुछ यूनानी कविता सुनने का अवसर मिल चुका था।

रूसी कविताओ को अनूदित करने की बात तो मेरे मन मे थी ही, मैंने शर्मा जी से एक अनुबंध किया कि हम लोग जब भारत लौटेंगे तो किसी छुट्टी मे महीने-दो महीने साथ रहेंगे और दोनो मिलकर रूस की कविताओ का हिंदी मे अनुवाद प्रस्तुत करेंगे। केम्ब्रिज से लौटे मुझे नौ बरस हो गए हैं और इस बीच केवल एक रात मुझे उनके घर रहने का मौका मिल सका है। भविष्य के स्वप्न देखना कितना सुखद और सरल है और वर्तमान मे उनको साकार करना कितना दुष्कर। इसलिए यह कार्य मुझे अपनी सीमित योग्यता के बल पर अकेले ही करना पड़ा।

इंग्लैंड से लौटकर अपने अनुवादो का एक नमूना जनता के सामने रखने का मुझे एक और अवसर मिला। आकाशवाणी केंद्र, इलाहाबाद ने एक ऐसे कार्यक्रम की योजना बनाई जिसके अनुसार किसी प्रसिद्ध विदेशी कवि की कविता मूल भाषा में सुनाई जाती थी, बाद को उसका हिंदी अनुवाद दिया जाता था, साथ मे आवश्यकतानुसार टिप्पणी भी दी जाती थी। शायद उसे पंत जी ने छंद-गंध का नाम दिया था। इसी कार्यक्रम मे एक बार इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के रूसी शिक्षक प्रोफेसर सुरेश सेन गुप्त ने पूश्किन की कुछ कविताओ का पाठ किया, मैंने उनका छंदोबद्ध अनुवाद प्रस्तुत किया, उनपर संक्षिप्त टिप्पणियाँ भी दी। लोगो की स्मृति मे एक बार फिर यह बात ताजी हो गई कि सात-आठ वर्ष पूर्व मेरे कुछ अनुवाद हिंदी पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित हुए थे। कुछ लोगो ने उनकी सराहना भी की। प्रोफेसर सुरेश सेन गुप्त हिंदी समझते थे, मुझे विशेष संतोष इस बात से

हुआ कि उन्होंने मेरे हिंदी अनुवाद को रूसी मूल के बहुत निकट बताया। यदि ऐसी बात थी तो इसका श्रेय अंग्रेजी अनुवादों को कम नहीं था। वैसे अंग्रेज अच्छे अनुवादक है, इसमे मुझे कोई संदेह नहीं है।

तब से पिछले वर्ष तक मेरा ध्यान इन अनुवादों की ओर नहीं गया। हाँ, जिन दिनों स्वर्गीय अलेक्सेइ बरानिकोव के सुपुत्र श्री प्योत्र बरानिकोव नई दिल्ली के रूसी राजदूतावास मे सांस्कृतिक सहचारी के रूप में काम करते थे, मेरी इच्छा अवश्य हुई थी कि उन्हें अपने कुछ अनुवाद सुनाऊँ और उनकी सम्मति लूँ क्योंकि वे और उनकी पत्नी भी हिंदी के अच्छे ज्ञाता हैं। पर उन दिनों मेरा हाथ बहुत-से निजी और बाहरी कामों मे फँसा था और वे भी व्यस्त थे। मैंने उनसे अपने अनुवादों की चर्चा अवश्य की थी, वे उन्हें प्रकाशित देखना चाहते थे। उनके रूस लौट जाने के बाद भी हमारे पत्र व्यवहार में कई बार इन अनुवादों की चर्चा उठी, पर प्रकाशन की योजना बनाना तो दूर, मुझे यह भी पता नहीं था कि मेरे कागज-पत्रों में रूसी अनुवादों की वह पाण्डुलिपि कहाँ पड़ी है।

गत वर्ष वह फाइल एकाएक मेरे हाथ लग गई। उसके ऊपर मोटे अक्षरों में मैंने 'रूस-पीयूष' लिख रक्खा था। शायद सोचा हो कि अगर कभी संकलन प्रकाशित होगा तो उसे यह नाम दूँगा। अपने पुस्तकालय से मैंने सी० एम० बावरा और जेराड शेली की पुस्तकें भी ढूँढ निकाली। बावरा की पुस्तक मे आरंभ के खाली पृष्ठ पर मैंने लिख दिया था 'यदि किसी जाति के जीवन में अमृत का अंश पाना चाहते हो तो उसके कवियों के पास जाओ।' वाक्य और शीर्षक असंबद्ध नहीं लगते।

सत्रह-अठारह वर्ष पहले के इन पुराने कागज़ों अपने पुराने अक्षरों को देखकर (समय के साथ लिखावट भी कितनी बदलती जाती है!) जहाँ बहुत-सी पुरानी स्मृतियाँ जगी वहाँ अनुवादों से कुछ निराशा भी हुई। ६०-६५ अनुवादों में से लगभग आधे का स्तर मुझे निम्न लगा। तीस कविताओं का संग्रह क्या होगा। क्या इन्हें प्रकाशित करने का विचार बिलकुल छोड़ दूँ या तीस-पैंतीस कविताओं का अनुवाद फिर से करने का संकल्प करूँ। बाद की

बात ही मन को अधिक सुखकर लगी। मैंने पुराने अनुवादों में कुछ को दुहराया, कुछ का परिष्कार किया, कुछ का नया संस्कार किया और कुछ को अभिनव रूप दिया, कुछ नये अनुवाद भी किए और इस प्रकार यह चौंसठ कविताओं का संग्रह तयार हुआ। आप पूछ सकते हैं कि मैंने संग्रह में चौंसठ कविताएँ ही क्यों रक्खी। शायद मेरे पिछले काव्य-संग्रह 'चार खेमे चौंसठ खूँटे' के नाम का जादू अभी मेरे सिर से नहीं उतरा, पर सच बात यह है कि अकस्मात् कविताओं का चुनाव करके जब मैंने कवियों की संख्या गिनी तो वह चौबीस आई और कविताओं की चौंसठ। अनुप्रास विनोदकर हुआ।

अंत में दो शब्द अनुवाद के विषय में भी कहना चाहता हूँ। कविता में शब्द और अर्थ इतने संपृक्त होते हैं—'गिरा अर्थ जल बीचि सम'—कि उसके अर्थ को अलग कर उसे दूसरे शब्दों, दूसरी भाषा के शब्दों, का बाना पहनाना बहुत कठिन है। कुछ लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि कविता का अनुवाद हो ही नहीं सकता। पर असंभव मनुष्य के लिए बहुत बड़ी चुनौती और बहुत बड़ा आकर्षण है

जो असंभव है उसी पर आँख मेरी,
चाहती होना अमर मृत राख मेरी। (मिलन-यामिनी)

बहुत दिनों से, और बहुत-सी कविताओं का अनुवाद होता आया है। इन सबमें केवल समय, श्रम और शक्ति का अपव्यय हुआ है, इसे मानने के लिए मैं तयार नहीं। अच्छी-बुरी बहुत-सी चीजों के समान अच्छे-बुरे अनुवाद भी हैं। हर अनुवाद अनुवादक की योग्यता, पैठ, सृजनशीलता और सीमाओं से प्रभावित होता है। अपनी क्षमता, समझदारी, सृजनात्मकता का निर्णय सुरुचिपूर्ण पाठकों पर छोड़कर यहाँ अपनी कुछ सीमाओं की चर्चा करना ही यथेष्ट होगा।

मेरी सबसे बड़ी सीमा तो यही है और इसका जिक्र मैं पहले भी कर चुका हूँ, कि मैं रूसी नहीं जानता और ये अनुवाद अंग्रेज़ी अनुवादों पर निर्भर हैं।

अंग्रेज़ी भी मेरे लिए विदेशी भाषा है और किसी भी विदेशी भाषा की पूरी समझदारी का दावा केवल दंभी कर सकता है।

अंग्रेज़ी अनुवादकों ने यह भी दावा किया है कि उनके अनुवादों में छंद भी वही हैं जो मौलिक रूमी में। एक योरोपीय भाषा से दूसरी योरोपीय भाषा में छंद को एक ही रखने की संभावना हो सकती है, पर हिंदी के लिए यह अकल्पनीय है। छंद भी कविता के अविभाज्य अंग हैं। पंत जी ने अपने 'पल्लव' की भूमिका में हर छंद को एक विशिष्ट भावना का वाहक बनाया है। मैंने भी प्रयत्न किया है कि कविता की भावना के अनुरूप छंदों का उपयोग किया जाए। मैं कितना सफल या असफल हुआ हूँ यह बात आप कविताओं के भावों में डूबकर बता सकेंगे।

छंद और तुक जहाँ भाषा के अलंकार हैं वहीं भाषा की स्वच्छंद गति में बाधाएँ भी हैं। जहाँ भाषा भाव एकात्म होकर चलते हों वहाँ शायद यह बात कम अनुभव की जाय पर अनुवादों में छंद और तुक सबसे बड़ी बाधाएँ उपस्थित करते हैं। मैंने यह देखा कि मेरे पुराने अनुवाद प्रायः वहीं निष्प्रभ और शिथिल थे जहाँ उन्हें आग्रहपूर्वक छंद और तुक में बाँधने का प्रयत्न किया गया था। नए अनुवादों में उस बंधन को ढीला कर और वांछित लयों का आधार ले मैं, अपनी समझ में उन्हें मूल के भावों विचारों के अधिक निकट ही नहीं लाया हूँ, अधिक सजीव भी बना सका हूँ। हमारा आधुनिक मानस छंदों के बंधनों और तुकों की कृत्रिमता से ऊबा हुआ है, इसके सबूत आज हमारी कविता में स्पष्ट हैं।

सफल और परिपूर्ण कविता में भाव और भाषा एक दूसरे के अनुरूप होते हैं, या उनको होना चाहिए ठीक है पर कविता का इतिहास उनके विपर्यय से भरा पड़ा है। हमें आश्चर्य हो सकता है पर तथ्य यही है कि कविता में, बावजूद इसके कि वह कला शब्दों की है, प्रधानता भावों को दी जाती है। शब्दों का साधन समझा जाता है भावों को साध्य— भाव अनूठा चाहिए भाषा कैसिउ होय। विश्वास शायद इसके पीछे यह है कि भाव का अनूठापन भाषा को अपने पीछे खींच ही ले जाता है। जब दोनों को साथ नहीं, आगे-पीछे चलना है तो उचित यही है—इसमें भारतीय दृष्टि भी है—कि भाषा (प्रकृति) भाव (पुरुष) की अनुगामिनी हो। सफल अनुवादक भी

वही होता है जो अपनी दृष्टि भावों पर रखता है। शाब्दिक अनुवाद न शुद्ध होता है न सुंदर। भाव जब एक भाषा माध्यम को छोड़कर दूसरे भाषा-माध्यम में मूर्त होना चाहेगा तो उसे अपने अनुरूप उद्बोधक और अभिव्यंजक शब्द राशि सँजोने की स्वतंत्रता देनी होगी। यहीं पर अनुवाद मौलिक सृजन हो जाता है या मौलिक सृजन की कोटि में आ जाता है। ऐसा देखा गया है कि सफल अनुवादक वे ही हुए हैं जिनका मौलिक सृजन पर भी कुछ अधिकार है। दूसरे शब्दों में, अनुवाद भी मौलिक सर्जन की ही एक प्रक्रिया है। नहीं तो आज संसार के बड़े-बड़े सर्जक अनुवाद की ओर झुके न दिखाई देते।

मैंने इन अनुवादों में कथन से कथ्य पर, शब्दों से शब्दों में निहित या शब्दों के पीछे छिपे भावों पर, अधिक ध्यान दिया है और ऐसा करने में शायद मैंने ज्यादा बड़ा दायित्व अपने ऊपर लिया है। कहने के लिए क्षमा चाहूँगा कि यदि मुझमें मौलिक सर्जक का भी यत्किंचित् विश्वास न होता तो मैं यह साहस कदापि न कर सकता।

मेरी पुरानी पांडुलिपि में एक बात बड़ी मनोरंजक और ध्यान देने योग्य है। उसमें कहीं भी इन अनुवादों को अनुवाद नहीं कहा गया है। हर अनुवाद के नीचे लिखा है फलाँ 'कविता के आधार पर'। मैं चाहता हूँ कि इन अनुवादों को पढ़ते समय यह छोटी-सी पर महत्त्वपूर्ण बात ध्यान में रखी जाए।

हजारों पाठकों में शायद एक ऐसा होगा जो मूल से इन अनुवादों की तुलना करके देखेगा। अधिकतर लोग इन्हें इसी विश्वास से पढ़ेंगे कि इन्हें मैंने प्रस्तुत किया है। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि आपका यह विश्वास मेरे लिए बड़ा भारी संयम है।

इन रूसी कविताओं के हिंदीकरण में मुझे जो आनंद मिला है उसमें आप मेरे सहभागी हों।[1]

१३, विलिंगडन क्रिसेंट, नई दिल्ली-११

—बच्चन

२७-९-६३

---

१ रूसी नामों के शुद्ध उच्चारण के लिए मैं गोयेरा जी का आभारी हूँ।

क्रम

रूसी कविता—एक विहगावलोकन

किसी भी देश या जाति के काव्य-साहित्य का स्वरूप उसके भूगोल, इतिहास, सघर्ष, जीवन-पद्धति, समाज-नीति राष्ट्रीय आदर्श, राष्ट्र धर्म, दर्शन और संस्कृति पर निर्भर करता है।

रूस भी अपवाद नहीं है।

भूमि विस्तार की दृष्टि से रूस ससार का सबसे बडा देश है। पृथ्वी पर उपलब्ध थल भाग का लगभग छठा हिस्सा अकेले रूस के अतर्गत है। नारवे और स्वीडन को छोडकर यूरेशिया महाद्वीप के सारे उत्तरी भाग मे रूस का फैलाव है और दक्षिण मे वहा तक चला गया है जहाँ मध्य एशिया की भूग मेखला खिची है। रूस मे एक कहावत प्रचलित है कि रूस देश नहीं दुनिया है।

उत्तरी ध्रुव से जब ठडी हवाए चलती हैं तब सारे रूस पर होती हुई वहीं जाकर रुकती है जहा व मध्य एशिया की पर्वतमाला मे टकराती हैं। रूस ठडा देश है—बर्फ से ढके विस्तृत भू भागो का लबी घास के चरागाहो का, सघन जगलो का, लबे चौडे रगिस्तानो का अनुवर-बजर पठारो का साथ ही खेती के योग्य सपाट उपजाऊ मैदानो का भी।

फिर भी जिस प्रदेश मे रूस की विशिष्ट सभ्यता-सस्कृति का विकास हुआ वह अपेक्षया छोटा है उसके पूर्व म यूराल पर्वत है दक्षिण म कार-पथियन और काकेशस गिरिमाला तथा कैस्पियन और कालासागर। बीच से होकर योरोप की सबसे बडी नदी वोल्गा मद-स्वच्छन्द बहती है जिसका

सास्कृतिक सबध राहुल साकृत्यायन ने गगा से करा दिया है।

दसवी-सवत के सदियो पूर्व से इस लबे चौडे भू भाग के दक्षिणी प्रातो मे सीथियाई समरेशियाई गाथ और हूण आदि युद्ध प्रिय, बबर यायावर जातिया अपना-अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए सघष करती आ रही थी।

ईसा की पहली और दूसरी शताब्दी मे इस रगमच पर पश्चिम और दक्षिण से उस साहसी स्लाव जाति का प्रवेश आरभ हुआ जिसे आज के तीन चौथाई रूसियो का पूवज कहा जा सकता है। इन्होने पहले तो उपयुक्त अधसभ्य धुमन्तू जातियो को परास्त किया और बाद को पूव के उन तुर्की तातारो से जा भिडे जिन्हे पराजित करने के लिए उन्हे स्कैंडिनविया की रूस नामक जाति की सहायता लेनी पडी और जिससे ही सभवत इस देश का नाम रूस पडा। पूश्किन के मन म इन्ही प्रारम्भिक सघर्षो की स्मृतिया रही होगी। जब उन्होने लिखा

स्लाव और फिन कलमुक, तुगुस की म अभिमानी सतान
जिनके गौरव की गाथा से गुजित है रूसी मदान!'

इन्ही रूस और स्लाव जातियो ने मिलकर ईसा की दसवी शताब्दी म प्रथम रूसी राज्यवश की नींव डाली, कीएव को राजधानी बनाया, यूनान से व्यापारिक सबध स्थापित किए और इसी वश के राजा व्लादिमीर प्रथम ने सन् ६८६ मे सवप्रथम ईसाई धम स्वीकार किया—यूनानी कट्टर-पथी चच का ईसाई धम।

ऐसा न समझा जाना चाहिए कि इस राजवश की प्रभुता समस्त रूस न मान्य थी। स्लाव उपजातिया के कई और राजवश थे जो कीएव के विरुद्ध तथा आपस म भी लडा करते थे। इस पारस्परिक वैमनस्य का लाभ उठाकर पूव के तातारो और मगोलो ने तेरहवी सदी मे कीएव को बिलकुल नष्ट भ्रष्ट कर दिया, और वाल्गा के तट पर सराय नामक स्थान म अपनी राजधानी बनाई। डेढ सौ वर्षो के बाद जब उन्हें अपदस्थ करने के लिए फिर से स्लाव राज्य परिवारो का सघ बना तो उसका नतत्व मास्को के राज्यवश

ने किया और उसने न केवल मगोलो को मार भगाया बल्कि उत्तर, पश्चिम, दक्षिण—सब ओर राज्य का विस्तार किया। इसी वश के इवान चतुथ अथवा भूरकर्मा इवान ने १५४७ मे अपने को समस्त रूस का जार घोषित किया, और अपने सारे प्रतिद्वदी सामतो को शक्ति-क्षीण और महिमाहीन कर दिया।

इवान के उत्तराधिकारी के राज्य-काल म सामतो ने फिर से शक्ति सचय करना आरभ किया और दास प्रथा सुदृढ हुई, जिसके अनुसार भू-स्वामी भूमिवासियो का भी स्वामी होता था, उनसे गुलामो की तरह काम ले सकता था और उन्हे यह अधिकार नही था कि वे एक सामती क्षेत्र से दूसरे म जा सकें।

इवान का पुत्र पुत्रहीन मरा और नया जार चुन जाने के पूव सामतो मे भीषण सघष हुआ, आतरिक क्रातिया हुई, बाहरी आक्रमण हुए और अततोगत्वा रमानोव परिवार के मिखाइल रमानोव को जार चुना गया जिसके वश ने अगले तीन सौ वर्षों तक, यानी जारशाही के अत होने तक, रूस म राज्य किया।

मध्ययुग म यथा राजा तथा प्रजा का नियम था। रमानोव ने रूस को एक नई दृष्टि दी जिसने रूस के सामाजिक एव सास्कृतिक विकास के लिए नई भूमि तैयार की। उसकी चर्चा हम बाद को करेंगे।

जसाकि हम ऊपर देख चुके हैं, रूस अब तक अपने को व्यवस्थित करने के सघष म ही रत था। ऐसी स्थितियाँ किसी विशिष्ट साहित्यिक आदोलन, उपलब्धि अथवा रचना के लिए उपयुक्त वातावरण उपस्थित नही करती। ईसाई धम के प्रवेश के पूर्व रूस का साहित्य लोक-कथाओ तक सीमित रहा होगा जिनकी क्षीण प्रतिध्वनिया शायद अब तक मिल सकती हैं। ईसाइयत के साथ धर्म-सबधी लेखन-पठन आरभ हुआ और राज्य स्थापना के साथ इतिहास-लेखन का काय। सोलहवी सदी के अत तक विशुद्ध साहित्य की कोटि मे आनेवाली केवल एक रचना का नाम लिया जाता है, 'इगोर की चढाई'—सभवत यह बारहवा सदी के अतिम भाग की रचना

है, जो स्लाव-तातार मुठभेड पर आधारित है। किंतु, इसमे कोई सदेह नही कि जीवन के सघर्ष और यूनानी चर्च और भाषा के सपर्क से—यूनानी से बहुत से धार्मिक साहित्य का अनुवाद रूसी मे हुआ—रूसी भाषा ने बडा ही ओज और बल सचय किया।

रमानोव की जिस नई दृष्टि की चर्चा ऊपर की गई है वह थी रूस का पश्चिमी योरोप की ओर अभिमुख करना। उसने इग्लैंड और हालैंड से व्यापार बढाया, विदेशी इजीनियर और डाक्टर बुलाए, और योरोपीय प्रभाव को स्थायित्व देने के लिए उसने एक सहस्र जर्मन परिवारो को लाकर मास्को मे बसाया।

पश्चिमी योरोप की ओर देखने और उसमे प्रेरणा लेने की यह प्रवृत्ति सत्रहवी और अठारहवी शताब्दियो मे चलती रही। रमानोव के उत्तराधिकारियो मे प्योत्र महान और महारानी कैथरिन के नाम प्रसिद्ध हैं। प्योत्र ने प्राचीन रूसी रस्म रिवाजो को तिलाजलि देकर जीवन के समस्त क्षेत्रो मे योरोपीय रहन-सहन का प्रचार किया-कराया। कहा जाता है कि अपने सामतो को एकत्र करके उसने अपने हाथ से उनकी दाढिया काटी। बाद को दाढी रखनेवालो पर टैक्स लगाया। यह केवल प्रतीकात्मक था।

महारानी कैथरीन ने रूस मे फ्रासीसी सस्कृति और साहित्य का प्रवेश कराया और सामत परिवारो से सबद्ध नवयुवको की शिक्षा-दीक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया, पर कृषक प्रजा का सास्कृतिक स्तर प्राय जहा का तहाँ बना रहा।

सत्रहवी और अठारहवी शताब्दिया भी शाति की शताब्दिया नही थी। इनमे रूस की राजनीति थी पश्चिम की ओर बढना और पूर्व की शक्तियो को बढने से रोकना और अक्सर उसकी टक्कर फिनलैड, एस्तोनिया, लातविया लिथुआनिया स्वीडेन पोलैड, जर्मनी, (अठारहवी सदी के मध्य, एक रूस-जर्मन युद्ध मे लगभग ३००००० रूसी मारे गए) उक्रइन के कज्जाकों और तुर्की साम्राज्य से होती रही।

इन शताब्दियो मे जनता मे लोकगीत, लोककथा, तथा धार्मिक वार्ताओ

की सष्टि हुई पर इनकी गणना उन दिनो साहित्य मे नही होती थी—साहित्य कोटि मे आनेवाले क्रिया-कलाप का केंद्र राजदरबार था और वहा जो कुछ लिखा गया वह दरबारी था, कृत्रिम था, और प्राय फ्रासीसी साहित्य का अनुकरण था—और एक ऐसे समय के फ्रासीसी साहित्य का जो स्वय यूनान और रोम के पुराने साहित्य के नियमो पर चलने के कारण नकली, निर्जीव और रूढिबद्ध था।

अठारहवी सदी के अत मे पश्चिम योरोप और रूस के मानसिक स्तरो म भारी अतर था। पश्चिमी योरोप मध्ययुग से निकल नवजागरण (रेनेसास) और नवसुधार (रिफार्मेशन) के दो सास्कृतिक और धार्मिक आदोलनो के बाढ-बवडर को झेल, कुछ काल प्राचीन मनीषियो के सरक्षण-अनुशासन मे बिता, रूमानियत के रहस्यमय द्वार को खटखटाने लगा था, रूस अब भी मध्य युग म पडा था। उसने नवजागरण या नवसुधार का कोई समानातर आदोलन नही जाना था। उसका सामती वर्ग अवश्य कुछ शिक्षित दीक्षित हो उन्ही नियम विजडित साहित्य रूपो की अनुकृति उपस्थित कर रहा था जिनसे अब पश्चिमी योरोप ऊब चला था। परतु ध्यान देने की बात यह है कि इस प्रवृत्ति ने रूस को उच्चकोटि का साहित्य भले ही न प्रदान किया हो, उसने रूसी भाषा को ऐसा परिमार्जित परिष्कृत, गरिमामय और गतिशील बना दिया कि वह जाति जीवन से सबद्ध सभी प्रकार के भाव-विचारो की सहज वाहिका हो सके। यही भाषा थी जिसे उन्नीसवी सदी म पूश्किन ने अपनी असाधारण प्रतिभा और रूमानी युग के सवेगो के बल पर प्रभ, प्राजल और प्रभावपूर्ण बनाया।

रूसी भाषा और साहित्य को योरोप की समुन्नत और समृद्ध भाषाओ के साहित्य का समकक्ष बनाने का श्रेय निश्चय ही पूश्किन को है। रूस के पास नवजागरण की देन शेक्सपियर, नवसुधार की देन मिल्टन, पुरा साहित्यानुशासन की देन ड्राइडेन की परपरा न होने पर भी उसका पूश्किन रूमानी युग के प्रतिनिधि कवि बाइरन का सहज समकक्षी है। साहित्य की यात्रा मे रूस ने निश्चय ही विलब से प्रस्थान किया, फिर भी रूमानीयुग

म वह पश्चिमी योरोप के साथ कधा मिलाकर चला। और, तब से आज तक रूसी काव्य योरोपीय काय के साथ कदम-ब-कदम चल रहा है—सदी के प्रारम्भ म उसमे शैली-कीटस का सा रूमानी उच्छवास है मध्य और अत म टेनिसन की सी आभिजात्य अभियक्ति और उससे विरति, बीसवी सदी के प्रारभ मे विकसित व्यक्तिवादिता इसके पश्चात ऐतिहासिक कारणो से योरोपीय काव्य विघटन और कुठा का काव्य हो जाता है और रूसी क्राति और क्तारबदी का और आज दोना प्रवत्तियो से मुक्ति पान के पयास किसी न किसी रूप मे हो रहे ह।

मोटे तौर पर बाहरी रूप-रेखा की समानता के बावजूद यह न मान लिया जाना चाहिए कि इन दो शताब्दियो म रूसी काव्य की अपनी काई विशिष्टता नही रही। इसीकी ओर सक्षेप मे सकेत करना निम्न पक्तियो का ध्यय है।

१८१२ म जब नेपोलियन ने रूस पर आक्रमण किया उस समय उसकी चाहे जितनी धन-जन हानि हुई हो पर उसके बाद से मध्य शताब्दी म क्रीमियाई युद्ध तक रूस की शक्ति और प्रभता निरतर बढती रही—क्रीमिया के युद्ध मे अवश्य उसकी हार हुई। नेपोलियन को पराजित करने के लिए इग्लड, प्रशा, आस्टिया और रूस का जो सघ बना उसम रूस न महत्त्वपूण भूमिका अदा की, दक्षिण और पूव म उसने अपना राज्य विस्तार किया और देश के अदर, उन्नीसवी सदी के व्यावहारिक विज्ञान से सम न्वित हो सवतोमुखी औद्योगिक विकास की नीव डाली। इसी काल म शासन यवस्था योरोपीय ढग से सगठित की गई, कृषक प्रजा के बधन कुछ ढीले किए गए और जनता म जो अधिकार चेतना जागी उसका सबूत यह है कि १८२५ म एक विद्रोह भी हुआ जो दिसबर विद्रोह के नाम स प्रसिद्ध है।

साहित्य मे यह पुश्किन, ल्यूतमेव लेरमेतोव, कोल्तसोव और खाम्या कोव जस कवि और गोगोल जसे कथाकार-नाटयकार का युग है जिसे रूसी साहित्य का स्वणयुग माना जाता है और पुश्किन को उसका निश्चित

प्रतीक और प्रतिनिधि।

पूश्किन का जन्म सामंत परिवार में हुआ और उनकी शिक्षा-दीक्षा, उस समय की प्रचलित प्रथा के अनुसार, फ्रांसीसी अध्यापकों की देख-रेख में हुई। उनपर अठारहवीं सदी में व्याप्त पुरा साहित्यानुशासन का गहरा प्रभाव पड़ा, पर युग की रूमानी भावनाओं का भी उन्होंने खुलकर स्वागत किया। वे कवि को पैगम्बर का दर्जा देते हैं, जो दिव्य-दृष्टि से जग जीवन के सत्य को देखता है, और दैवी प्रेरणा से उसे व्यक्त करने के लिए मुंह खोलता है। प्रेम की दुनिया उनकी अपनी दुनिया है और उनका कोना कोना जैसे उनका देखा-जाना है। वे स्वप्न और कल्पना के संसार के सहज निवासी हैं, और यथार्थ की कटुता से उन्हें क्षोभ होता है। दीन-दुखियों के साथ उनकी सहानुभूति है, सरकारी पद पर रहते हुए भी वे सरकार द्वारा निर्वासित राजबंदियों को आशा का संदेश देते हैं। प्रकृति के वे प्रेमी हैं—उसके उग्र और कोमल दोनों रूपों को उन्होंने अपना स्नेह दिया है—बुलबुल के बोल को भी, बिजली की कड़क को भी। उन्होंने आंतरिक उल्लास के साथ आंतरिक अवसाद भी जाना है। वे बाह्य वर्णन के उतने ही बड़े कवि हैं जितने आत्मचिंतन के। उत्तम, उदात्त, सुंदर, सुरुचिपूर्ण कभी उनकी दृष्टि से ओझल नहीं होता। सबके ऊपर वे अपने राष्ट्र के गायक हैं। वे व्यापक अर्थ में रूस के राष्ट्रकवि हैं—जैसे इंग्लैंड के शेक्सपियर, इटली के दांते, जर्मनी के गेटे, भारतवर्ष के कालिदास। जो भी रूसी जीवन, विचार, भावना, आकांक्षा, आदर्श, एक शब्द में आत्मा के निकट है वह सब पूश्किन में मौजूद है।

बड़ा विचित्र है कि जीवन, प्रवृत्ति और मान्यताओं में स्वच्छंदतावादी होते हुए भी पूश्किन अपनी अभिव्यक्ति में पुरा साहित्यानुशासन का पालन करते हैं। इसने उनकी भावनाओं को उद्दाम, और अभिव्यक्ति को कृत्रिम होने से बचा लिया है। उनके काव्य में गहराई है सच्चाई है पर भावावेश और अतिशयोक्ति नहीं, उनमें अनुभूति है, कल्पना है, पर उन्माद नहीं (उनकी एक कविता है—'मुझसे मेरी बुद्धि न छीनो'), अनंत की ओर

उडान नही। वे अपरिचित और असाधारण को भी परिचित और साधारण के धरातल पर उतार लाते हैं। अज्ञात और रहस्यपूर्ण से वे दूर रहते है।

लेरमेन्तोव रूमानियत के आवेग, प्रखरता और वाग्विदग्धता के कवि हैं। जग जीवन के सहज-साधारण से उन्हे चिढ है। गध भरे मद पवन मे हिलता आचल उन्हे नही आकर्षित करता उनकी निगाह उस जहाज की ओर जाती है जो तूफानो से लडता लहरो से झगडता आगे बढता है

पोत होड ले रहा निरतर तूफानो से,
जसे तूफानो में ही सब शाति भरी ह।'

उनका जीवन भी तूफानी था। पूश्किन के समान वे भी अपने यौवन मे ही द्वद्वयुद्ध म मारे गए। फिर भी उनकी अतिम रचनाओ मे उनका भावावेग सुस्थिर हुआ है उन्होने इस धरती के दु ख शोक-सकुल क्रदन के पीछे किसी स्वर्गिक सगीत की मद प्रतिध्वनिया सुनी हैं और कभी-कभी तो उनकी दष्टि स्थूलता के सारे आवरणो को भेदती हुई शून्य म खो गई है। जीवन का प्याला' म वे कहते हैं

' चमक रहा था
जो कचन का प्याला वह अस्तित्व हीन था,
भरा हुआ था वह जिससे केवल सपना था,
और स्वप्न वह नहीं हमारी आशा का था।'

काव्य की हर प्रवृत्ति अपना सतुलन खोजती है। प्रखरता की अति होती है तो कोमलता अपना घघट हटाती है। शेली के साथ कीटस आते हैं निराला के साथ पत। लेरमेन्तोव जितने प्रखर हैं त्यूत्चेव उतने ही कोमल। लेरमेन्तोव मनस्वि हैं, त्यूत्चेव दार्शनिक। उनकी सहज दृष्टि शात और गभीर की ओर है। उन्होने 'कवि' शीर्षक कविता म उस कवि के ऊपर व्यग्य किया है जिसके भाव विचारो म तूफान मचलते'। वे मुख्यत गीतकार हैं सयत भावो के सयमित स्वरो के। 'पुरानी चिट्ठियाँ' का वातावरण कितना शात है पर चिट्ठियाँ फाडनेवाले के मन म कितनी गभीरता उद्विग्नता है।

'शांति नीपक' कविता में वे कहते हैं

'अपने अंदर बसो,
रहो परियों की या जादुई कल्पना की दुनिया में,
जहाँ जगत का हल्ला-गुल्ला नहीं पहुँचता,
और जहाँ के रहस राग के लिए
धरा के कान बधिर है।
उनको सुनो,
धारो मन को,
मुख से कोई शब्द न निकले।'

और जो 'रहस राग' उन्होंने पकड़ा है वह परियों के लोक का है या नहीं, पर इसी कविता ने संभवत उनसे अधिक मधुर गायक नहीं जाना। रूसी कविता में पूश्किन के बाद त्यूतचेव का ही नाम लिया जाता है।

देखा गया है कि रूमानी युग में लोगों का ध्यान लोक-जीवन, लोक-गीतों की ओर भी जाता है। इंग्लैंड में हम परसी और मैकफर्सन का नाम सुनते हैं। हिंदी में छायावादी युग में रामनरेश त्रिपाठी ने ग्राम-गीतों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया। रूस में कोल्तसोव उसी कोटि के कवि हैं। वे स्वयं कृषक थे। उन्होंने लोक-लय में लोक-जीवन की बहुत सी सरल सुखद झाँकियाँ प्रस्तुत कीं। इस ग्रामीण प्रेमी और उसकी प्रेयसी की उलझन तो देखें

'उसके दिल की हर धड़कन को
कह देती उसकी वाणी,
पर सुनकर भी नहीं समझती
उसकी भोली दिलजानी।
'किसके हित', वह बाला पूछा
करती है 'तुम गाते हो?
वह है कौन कि जिसको अपना
दुखमय गीत सुनाते हो?'

करने का इन्हें पर्याप्त समय मिला। ये सब सम्भ्रात परिवारों के कवि थे परंतु इनका दृष्टिकोण रूमानी कवियों के अनुरूप उदार था—इनकी सवेदना कृषक, मजदूरों, बंदियों और शोषितों के साथ थी। परंतु उनका पक्ष लेने का आग्रह उनमें न था। कविता उन्होंने सांस्कृतिक क्रिया-कलाप के रूप में अपनाई थी, फिर भी उनकी भावनाओं में सच्चाई है, उनकी कल्पना में संयम है, उनकी कला में निखार है। साथ ही उनमें काव्य का वह गुण भी है जो उसे देश-काल की सीमा से निकालकर सार्वजनीन और सार्वयुगीन बना देता है। पोलेन्स्की की 'अंधा पादरी' और 'हूम की मौत', नेक्रासोव की 'भूखा' और 'वे-कटा खेत' ऐसी रचनाएँ हैं जिन्हें भावप्रवण काव्यप्रेमी हर देश हर काल में पसन्द करेंगे, क्योंकि वे जीवन के कुछ ऐसे मर्मों को छूती है जो मानवता के साथ तदाकार है।

उन्नीसवीं सदी का उत्तरार्ध शासन की ओर से सतर्क सुधारों और बौद्धिक वर्ग के वर्धमान असंतोष का समय है। इस असंतोष का ही परिणाम था कि १८८१ में अलेक्सान्द्र द्वितीय की हत्या कर दी गई। हत्या से राजतंत्र तो टूटा नहीं, अलेक्सान्द्र तृतीय ने बौद्धिक वर्ग का निर्ममता से दमन किया और बहुतों को साइबेरिया में देश निकाला दे दिया जहां पुश्किन के समय से ही राजद्रोही भेजे जाते थे। अलेक्सेइ तोल्स्तोय की 'बंदी' शीर्षक कविता का संकेत भी ऐसे ही बंदियों की ओर है। इस दमन ने अवसाद निराशा और घुटन के ऐसे युग को जन्म दिया जो १९०५ तक चला जबकि जापान द्वारा रूस की पराजय पर रूसी जनता ने पुनः विद्रोह किया। इस युग के प्रतीकात्मक और प्रतिनिधि लेखक चेखाव हैं। एक तो वे स्वयं शोषित वर्ग से थे, दूसरे, वे क्षय रोग से पीड़ित थे, तीसरे उन्हें ऐसा दमघोंट वातावरण मिला। चेखाव ने अपनी प्रतिभा से जीवन का बहुत कुछ दबा, छिपा, कुचला देखा। उनका साहित्य उल्लास का साहित्य नहीं, वह उत्साहवर्धक भी नहीं, पर दुख-दर्द सहने की सहकर भी मानवता का स्वाभिमान बनाए रखने की शक्ति अवश्य देता है।

इस युग में कवियों के दो दल हो जाते हैं। एक के प्रतिनिधि हैं सोलो-

वयेव सोलोगुव को मान सकते हैं, दूसरे में बालमोन्त और ब्रयुसोव को। प्रथम दल के लोग जीवन की सुकुमार भावनाओं पर गीत लिखते हैं, *विशेषकर प्रेमगीत—सोलोवयव की 'प्रेयसी' शीर्षक कविता उदाहरण है।* शब्द-संगीत पर इनका विशेष आग्रह है। दूसरे दल के लोग दमघोट वातावरण की घबराहट तो व्यक्त करते हैं, पर उभरकर कुछ कहने का साहस उनमें नहीं है। ब्रयुसोव की 'सगत राश' और बालमान की 'नीरवता' शीर्षक कविताओं से यह बिलकुल स्पष्ट है। सगत राश जो वदीघर बना रहा है उसमें उसीका कोई भाई-बंधु बंद होगा, यह जानते हुए भी वह उस बनाने से हाथ नहीं हटाता। बालमात युग के वातावरण को चित्रित करते हैं

> 'छा रही है रूस के मुख पर थकावट की उदासी,
> छिपे, गहरे घाव की पीड़ा, नहीं जो व्यक्त होती,
> एक ऐसी वेदना जो मूक सीमाहीन है, आशारहित है,
> शीत, नीलाकाश ऊपर, और नीचे दूरियों की धुंध फैली।'

१६०५ से १६१७ तक का समय क्रांति की तैयारी का समय है। सुधारवादियों के विरुद्ध बुद्धिवादियों ने विद्रोह किया था, पर बुद्धिवादियों में प्रदर्शनप्रियता अधिक थी, कार्यशीलता कम। दमन से उभर उठने की जगह वे दब गए थे। रूस की प्रगतिशील शक्तियों की आशा अब इन दोनों से भिन्न एक ऐसे वर्ग पर लग रही थी जो औद्योगिक कारखानों और संस्थानों में संगठित हो रहा था। पर इस वर्ग में साहित्यिक मुखरता का अभाव था, उसमें इसकी परंपरा भी नहीं थी।

आश्चर्य है कि १६१७ की क्रांति का पूर्वाभास रूस के कवियों में नहीं मिलता। साहित्यिक सृजन जिस वर्ग के हाथ में था वह अपनी दबी हुई मन स्थिति में योरोप के कला के लिए कला के सिद्धांत की दुहाई देकर अपनी सत्ता बनाए रखने का उपक्रम कर रहा था। फ्रांस के प्रतीकवाद (सिम्बोलिज्म) के आधार पर रूस में भी प्रतीकवादियों का एक गुट बन गया। इसका लक्ष्य था काव्य में संक्षिप्तता सांकेतिकता और ध्वन्यात्मकता लाना। एक गुट अपने को परिपूर्णतावादी कहता था। इसके नेता थे

गुमिलेव और अन्ना आख्मतोवा, इसके प्रमुख कवि ब्लोक थे। ये मालोव यव की परपरा मे थे। इनका ध्येय था कविता को निर्दोष, त्रुटिविहीन, निखरी, सजी, सँवरी बनाकर प्रस्तुत करना। कुछ अपने को भविष्यवादी कहते थे, एक समय पास्तरनाक और मयकोव्स्की के नाम इनके साथ सबद्ध थे। नाम और ध्येय की सूक्ष्म विभिन्नताओ के बावजूद क्रातिपूर्व के इन सब कविया का आग्रह कथ्य से अधिक कथन पर था। ये शब्द चातुरी, शैली की परिपक्वता और भाव-भाषा के रागमय सामजस्य की ओर अधिक ध्यान देते थे। किसी किसी मे रूस की चिन्तनीय दशा की चेतना भी थी जैसा कि अन्द्रेइ निएली की 'रूसी गाव' अथवा ब्लोक की 'गिद्ध' से स्पष्ट है। पर, निकट भविष्य म आनेवाली क्राति के स्वरूप के प्रत्यक्षीकरण की दिव्य-दृष्टि किसी कवि म नही थी। क्राति की तैयारी म अगर कोई सचेत होकर योग द रहा था तो वह था गद्यकार-कथाकार गोर्की।

१९१७ की 'अक्टूबर क्राति' ने सफल होकर जो स्वरूप धारण किया, समाज का ढाचा जिस तरह से उल्टा-परटा, राष्ट्र का जो लक्ष्य सामने रखा, वह इतना अप्रत्याशित था कि उसने बौद्धिक वर्ग के कविया को आश्चर्यचकित कर दिया। सहसा परिवर्तित आदर्शों का गायक बनना, बदली हुई राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितिया मे अपना स्थान समझना और परपरा से मिले अथवा बचपन और यौवन मे पडे सस्कारा का मिटा-भुलाकर नई मानसिक चेतना से सजग होना कविया के लिए बडा कठिन हो गया। मन्देल्सतम न 'सिपाही की मन स्थिति' बना ली शायद इससे वे निश्चित हुए। येसेनिन ने क्राति को कृषको की विमुक्ति का स्वप्न समझा—वे कृषकवग से आए भी थे। क्राति मजदूरा की क्राति थी, और प्रारभ मे मजदूरा और कृषको मे सघर्ष भी हुए। उन्होने निराश होकर आत्महत्या कर ली। मयाकोव्स्की ने अपने को विजयी सर्वहारा का चारण बनाया। 'हमारी कूच' उनकी बडी ओजस्वी, शक्तिशाली और उत्साहपूर्ण रचना है। पर मयाकोव्स्की की व्यक्तिवादिता क्राति की सामूहिकता के आडे आई और उन्होंने भी येसेनिन की मृत्यु के पाच वर्ष बाद आत्महत्या कर ली।

ब्लोक ने भी 'नई शक्ति' का गुणगान किया था, पर वे उन दोनों से पूर्व ही 'भ्रम विमुक्त' हो आत्महत्या कर चुके थे। पास्तरनाक अपने जीवन भर न अपने को क्रांति के आदर्शों के अनुकूल बना सके और न क्रांतिजन्य परिस्थितियों को अपने अनुकूल पा सके। 'हैमलेट' शीर्षक कविता उनकी असमंजसपूर्ण मानसिक स्थिति की द्योतक है। फिर भी क्रांति के पश्चात कवियों में शायद इन्हीं का नाम रूस की सीमाओं को पार कर बाहर जा सका। उनकी कविताओं के अंग्रेजी अनुवादों के एकाधिक संग्रह देखने में आए हैं। शायद कवि रूप में पास्तरनाक की प्रसिद्धि बढ़ाने में उनके उपन्यास 'डा० जिवागो' संबंधी विवाद का भी हाथ है। उन्हें इस ग्रंथ पर नोबेल-पुरस्कार देने की घोषणा हुई, पर अपने देश का रुख देखकर उन्होंने इसे लेने से इन्कार कर दिया।

क्रांति के पश्चात कतारखदी के काव्य की अगर कोई विशिष्ट उपलब्धि है तो उसका महत्त्व बाहरी दुनिया से अधिक रूस के लिए है। पर, काव्य और साहित्य के प्रति एक प्रगतिवादी दृष्टिकोण अवश्य रूस से सारी दुनिया में गया और हमारा हिंदी-काव्य भी उससे अपरिचित नहीं है।

रूसी साहित्य के विद्वानों का मत यह है कि क्रांति के पश्चात रूसी साहित्य का झुकाव पद्य की अपेक्षा गद्य की ओर अधिक रहा है और साहित्य की विशिष्ट उपलब्धियों के लिए रूसी गद्य की ओर देखना चाहिए, विशेषकर उसके कथा साहित्य को।

क्रांति के पश्चात रूस के इतिहास की सबसे बड़ी घटना है उसका द्वितीय महायुद्ध में प्रवेश करना और विजयी होकर निकलना। उसी की स्मृति में इलिया एहरेनबुर्ग की 'बच्चे' शीर्षक रचना यहाँ दी गई है। एहरेनबुर्ग मुख्यतया गद्यकार हैं, पर इस कविता में युद्ध की विभीषिका की चेतना के साथ कवि की कोमलता और आस्तिक भावना की झलक भी मिलती है। दृढ़ साम्यवादी व्यवस्था में भी पारिवारिक सुकुमारता, वत्सलता और ईश्वरीय बोध के लिए स्थान है, इसे जानकर शायद वे लोग कुछ आश्वस्त हों जो उसे नितांत जड़, कृत्रिम और यांत्रिक समझ बैठे हैं।

युद्धोपरात रूस की सबसे बडी उपलब्धि हुई है विज्ञान के क्षेत्र मे। आज से पाच वर्ष पूर्व सर्वप्रथम कृत्रिम चद्रमा अतरिक्ष मे छोडकर उसने सारे ससार को चकित कर दिया, और आज विज्ञान ससार म चद्रमा पर पहुँचने के स्वप्न देखे जा रहे हैं। ऐसे समय मे कालीशेव की 'चाद पर' शीर्षक रचना धरती माता से मानव-पुत्र के उस अटूट सबध की याद दिलाती है जो उसे बरबस, चद्रमा से पृथ्वी की ओर खीचेगा। कवि कल्पना करता है कि भविष्य के चद्र प्रवासी के हृदय म,

'हुड़क उठेगी अपनी परिचित, पूत, पुरातन
धरती पर वापस आने की, पग रखने की,
चद्र-जनित पर झटक-झाडकर
अपने सुख, दुख, इच्छाओ के सहज भार को
सहज भाव से अपनाने की।'

सोवियत समाजवादी गणतत्र पर स्तालिन के आधिपत्य के सुदीर्घ काल मे कितना दृढ अकुश अनुशासन नियत्रण था, कितनी सख्त जकडबदी थी—जिसका अनुभव साहित्य क्षेत्र म भी किया गया होगा—इसका कुछ रहस्योद्घाटन निकिता-ख्रुश्चोव की अपेक्षया उदार नीति के युग मे हुआ है। और, अब यदा-कदा ऐसे भी समाचार आने है कि वर्तमान रूस का नवयुवक लेखक वर्ग, साम्यवाद की सीमा म ही सही, अपनी अभिव्यक्ति की स्वतत्रता के प्रति अधिक सचेष्ट हो रहा है।

इस क्षिप्र विहगावलोकन को समाप्त करने के पूर्व मैं रूसी काव्य के कुछ विशिष्ट गुणो की ओर भी ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा। विविध युगो म विविध रूप लेते हुए भी समग्र रूसी काव्य की कुछ अपनी विशेषताएँ है।

रूस की भौमिक विराटता के बावजूद रूसी काव्य की परिधि सीमित है, उसके विषय साधारण और जन-जीवन के निकट है, उसका राग नियमित और स्वर सयमित है जहा कल्पना के खुल-खेलने का अवसर है वहाँ भी वह अनुशासित होकर चलती है। कथ्य म वह तथ्य के निकट और कथन

म सीधी-सादी है। अतिशयोक्ति, शब्दाडबर, कल्पना की उछल-कूद, अथवा दूर की कौडी लाने के प्रयास रूसी कविता मे नही है। वावरा का मत है कि रूसी कवि अपना कथन पूर्ण करने से पहले ही रुक जाता है और पूर्ण प्रभाव के लिए पाठक से प्रत्याशा करता है कि वह शेष अपनी ओर से मिलाए। रूसी कविता का आनद लेने के लिए पाठक मे भावप्रवणता और जागरूकता का होना आवश्यक है।

रूसी कवि प्रकृति के प्रति—और रूस म उसके कितने ही रूप हैं!—सवदा सचेत रहते हैं। पर उन्होने कभी प्रकृति पर अध्यात्म का आरोप नही किया जसे अपने यहाँ छायावादियो मे पत और महादेवी ने किया या अग्रेजी म वड सवथ ने। वे प्रकृति के सामान्य और परिचित रूप का ही वणन करते हैं पर उसका मानवीकरण करके नही, जैसे प्रसाद या निराला करते है। उनके यहा प्रकृति की अपनी अलग सत्ता है—ईश्वर से भी अलग मनुष्य से भी अलग। प्रकृति तटस्थ भी है—मनुष्य चाहे तो उससे कुछ ल ले कुछ उसका उपयोग कर ले।

प्रकृति की विविधता के समान रूसी कवियो का ध्यान मानव जीवन की विविधता की आर भी जाता है मानव स्वभाव की विविध और विचित्र गहराइयो की ओर। वे व्यक्ति की विशिष्ट परिस्थितिया मात्र नही देखते उसके पीछे विशिष्ट आत्मा भी देखते है अलग खडे होकर नही, उसम डूबकर उसे अपने म आत्मसात अथवा अपने को उसमे विलीन करके। इस छोटे-से सकलन म भी रूसी कवि, प्रेमी, बदी, कृषक पादरी, मजदूर सगत रास, गाव की लडकी, अभिनता, अतरिक्ष-यात्री आदि से भेंट की जा सकती है—और उनके अतमन की झाँकी भी ली जा सकती है।

निजी मतभावनाआ के भी रूसी बडे सूक्ष्म कवि हैं। रूसी कवि का भाव-जगत हृदय का हर कोना छूता है—प्रथम प्रेम के उल्लास से लेकर प्रमी की अतिम निराशा तक, प्रकृति के समग म, सहज आनद स उस मन स्थिति तक जिसम मानव जीवन स्वरूप और सवदा निरथक प्रतीत होता है मानव सपक म, साधारण आकपण से ऐसी सुकुमारता और उष्मा

चौसठ रूसी कविताएँ

१ | पैगम्बर[1]

दैवी दीप्ति प्राप्त करने की अमर तृषा लेकर मन मे,
पागल सा मैं घूम रहा था मरुस्थलो मे, निर्जन मे,
एक दूत स्वर्गीय विभा से सयुत सम्मुख प्रकट हुआ,
मेरे सारे तप, श्रम, सयम, साधन का फल निकट हुआ।

उसने अपनी कोमल उँगली से छू दी मेरी पुतरी,
लगा कि जैसे निशागमन पर नीद पलक पर हो उतरी,
और सामने मेरे चमकी भव्य भविष्यत् की रेखा,
भीत गरुड की भाँति फाडकर आख उसे मैने देखा।

उसने मेरे कान छुए तो ऐसा मुझको ज्ञात हुआ,
अबर से शत-शत वज्रो का जैसे साथ निपात हुआ,

---

१ १९५४ म जब यह कविता आकाशवाणी केंद्र, इलाहाबाद से प्रसारित हुई थी तब इसके साथ यह टिप्पणी दी गई थी

इस कविता मे पूश्किन ने छोटी-सी एक रूप-कथा के माध्यम से ससार को प्रोज्ज्वल बनाने के लिए व्याकुल और साधना लग्न अपनी काव्य-प्रेरणा का अतर्दहन ही चित्रित किया है। कविता साधारण-से वर्णन म उठती उठती अत मे उत्तेजक एव मार्मिक सदेश से भर जाती है।

श्रौर सुना मेरे कानो ने फिर नभ का कपन थर-थर,
सुना अधर मे उडने वाले नभ दूतो के पर का स्वर,

सुनी उदधि के उर की हलचल जिसमे चलते है जलचर,
सुना रसा से खीच रहे है रस कैसे तृण दल-तरुवर।
झुककर मेरी श्रोर, हाथ अपना फिर मेरे मुँह में डाल,
उस नैसर्गिक दिव्य दूत ने ली वह मेरी जीभ निकाल,

जिसमे लिपटे थे युग-युग के झूठ, दोष, निंदा के पाप,
श्रौर बीच मेरे अधरो के, जो कि रहे थे भय से काप,
एक साप की दुहरी-तीखी जिह्वा उसने दी बस डाल,
दिव्य दूत के हाथ हो रहे थे मेरे लोहू से लाल।

फिर उसने तलवार उठाकर मेरा सीना चाक किया
श्रौ' मदस्पदित मेरा दिल दूर काट कर फेंक दिया,
हुई इस तरह से जो खाली मेरी छाती की कारा
बद कर दिया उसमे उसने एक दहकता श्रगारा।

ऐसा परिवर्तित, मृत सा था विस्तृत मरु मे पडा हुश्रा
कि सुन गगन की गिरा गभीरा सहसा उठकर खडा हुश्रा—

"उठो, श्रौर मेरी वाणी से दिग्दिगत को ध्वनित करो,
उठो, प्रेरणा बल से मेरे जल-थल खडो पर विचरो।
कही रुका मत, श्रौर जहां भी मानव का श्रतर पाश्रो,
मेरे सदेशो की ज्वाला उसके श्रदर धधकाश्रो।"

२ | स्वर्ग दूत

एक नारकी, काला दानव, द्वेष बना मानो साकार,
नरक लोक के अंधकार पर मँडराता था बारबार,
एक स्वर्ग के दिव्य दूत ने, जो था ममता का आगार,
देव लोक का द्वार खोलकर नीचे देखा नयन उघार।

उस शंका की मूर्ति और उस अविश्वास की प्रतिमा ने
ज्योंही उस दैविक विभूति की अद्भुत आभा को देखा,
त्योंही उसके हृदय-पटल पर पहली बार, बिना जाने,
खिंची अचानक, विवश प्रेम की जाग्रत, ज्वालामय रेखा।

और बोल वह उठा, "विदा, हो गया मुझे तेरा दर्शन,
तेरी छाया से कुछ पाया, मैंने, स्वर्गिक अभ्यागत,
अब संपूर्ण स्वर्ग से करते घृणा नहीं मेरे लोचन,
और न अब संपूर्ण धरा से ही वे करते हैं नफरत।"

३ | कवि

कवि को नही सुनाई पडता जब तक वाणी का आह्वान,
नही जानता जब तक उससे प्रत्याशित है क्या बलिदान,
जीवन के झझट-झगडो मे उलझा रहता उसका ध्यान,
जग की लघु लघु चिन्ताओ मे डूबा रहता उसका प्राण।
उसकी पावन वीणा रहती पडी शिथिल, निश्चल, चुपचाप,
जड, जडतर, जडतम तद्रा मे गडता जाता अपने आप।
सभी ओर से घेरे रहती है उसको दुनिया नि सार,
उसको अपना जीवन लगता एक निरथक, दुर्वह भार।

लेकिन एक बार सुन लेते है जब उसके विस्मित कान,
स्वगलोक से जो मिलता है उसको वाणी का वरदान,
वह कल्पना गगन मडल में उडने को अकुलाता है,
सुप्त गरुड जैसे जाग्रत हो अपने पर फडकाता है।
जीवन के सब खेल-खिलौनो से वह लेता आँखें मोड,
अपनी चाल चला जाता है दुनिया करती रहती शोर।
दुनिया की पूजित प्रतिमाओ को देता वह ठोकर मार,
किसी जगत् पर शीश झुकाना उसको होता अस्वीकार।

पर्वत की चोटी-सा होता उसका गर्वित उन्नत भाल,
उसकी गति मे विद्युत होती, होता पैरो मे भूचाल।
उसके स्वर के अदर होता अबुधि का गर्जन गभीर,
झझा का आवेग, प्रवाहित होता जो घन कानन चीर।

४ | साइबेरिया को सदेश[1]

साइबेरिया के वर वीरो, तुम्हे दिलाता हूँ विश्वास,
यदि तुम रक्खो ऊँची अपनी युग युग अभिमानी गर्दन,
जिनसे तुमने भूमि भिगोई, व्यथ नही होगे श्रम-कण,
व्यथ नही होग मसूव जो है चूम रहे आकाश।

आशा मत छोडो चाहे जितनी काली हो दुख की रात,
क्योकि यही आशा है जिसकी प्राणदायिनी मदु मुसकान
जिंदो मे उत्साह भरेगी, फूकेगी मुर्दो मे जान,
और तुम्हारी आखें देखेगी नव युग का पुण्य प्रभात।

---

१ १९५४ मे जब यह कविता आकाशवाणी केंद्र, इलाहाबाद से प्रसारित हुई थी तब इसके साथ यह टिप्पणी दी गई थी

पूश्किन के समय मे साइबेरिया का ठडा, निजन वनप्रदेश रूस का काला पानी था। जारशाही के विरुद्ध क्राति की चेष्टा करनेवाले साहसी वीरा को देश निकाला देकर साइबेरिया भेज दिया जाता था। पूश्किन सरकारी पद पर प्रतिष्ठित थ, पर उनकी सहज सहानुभूति इन क्राति वीरो के साथ थी। इस कविता के द्वारा साइबेरिया के वर वीरो को जो सदेश उन्होने दिया था वह उनकी सहृदयता निर्भीकता और प्रगतिशीलता का प्रमाण तो है ही,उसम एक भविष्यवाणी भी है जो आगे चलकर सत्य हुई।

सारी दुनिया देगी तुमको सवेदना, स्नेह, सम्मान,
बदीघर के लौह सीखचे नही सकेगे उनको थाम,
लक्ष्य न तिल भर भी डिग पाए, रुके न पल भर को भी काम,
और सुनाई देगी तुमको मुक्तिदायिनी मेरी तान!

टुकडे-टुकडे हो जाएगी टूट ज़ालिमो की ज़जीर,
ढह जाएगी, बह जाएगी कैदीखानो की दीवाल,
आज़ादी की देवी तुमको पहनाएगी स्वागत माल,
और तुम्हारे हाथो मे फिर चमकेगी विजयी शमशीर।

५ | तीन धाराएँ

जगती के विस्तृत आगन मे
जिसपर अकित है अवसाद,
तीन छिपी धाराएँ बहती
जिनका भेद नही खुलता,
पहली है यौवन की धारा,
जिसमे लहराता उन्माद,
जिसमे कल्लोलित, हिल्लोलित
चलती मन की व्याकुलता।
और दूसरी धार कला की
जिससे कवि प्रेरित होता,
जिससे वह निजन के सूने-
पन मे भी भरता सगीत,
अतिम है जिसमे अतर की
चेतनता खाती गोता,
सब सुध बुध आमज्जित करता
अपने मे जिसका जल शीत।

६ | बुलबुल

ओ गुलाब की कली कुमारी,
मुसकानो मे क्या बधन ?
लतिकाओ मे अटका रखतीं
यद्यपि तुम बुलबुल का मन।

वदी वन, वह शरण तुम्हारी,
कर लो तुम इसपर अभिमान,
अधकार मे दूर-दूर, पर,
गूजा करता उसका गान।

७ | जाड़े की साँझ[1]

ले बर्फीले बात-बवंडर, बीहड़ बादल, विज्जु-वितान,
काले काले आसमान में चढ़ता आता है तूफान,
लगता कभी कि गर्जन करता कोई जंगल का हैवान
और कभी ऐसा लगता है रोता कोई शिशु नादान।
कभी इधर से, कभी उधर से झटका-झोंका आता है,
टूटी फूटी छत का छानी-छप्पर हिल हिल जाता है,
जैसे कोई पथ का बिलमा पंथी जब घर आता है,
आतुरता के साथ झपटकर दरवाज़ा खड़काता है।

---

१ १९५४ म जब यह कविता आकाशवाणी केंद्र, इलाहाबाद से प्रसारित हुई थी तब इसके साथ यह टिप्पणी दी गई थी

रूस देश का जाडा अपनी भीषणता के लिए प्रसिद्ध है। जब आसमान म बादल घिर आते है धरती बफ से ढक जाती है और तूफाना के शोर स कान के पर्दे फटने लगते हैं, तब एक क्षण के लिए वतमान को भूलकर मन सुधि और प्यार की दुनिया बसाने के लिए व्याकुल हो उठता है। पूश्किन की प्रसिद्ध रचना जाडे की साझ' म यही भाव व्यजित है।

खड़ा झोपड़ा होगा मेरा दर-दर से ढीला-ढाला,
दीप न उसमे जलता होगा, फैला होगा अँधियाला,
मेरी बुढिया दाई खिडकी के समीप बैठी होगी,
वृद्धापन के आलस के बस, या हो सभवत रोगी,
भूल गई होगी वह बीते दिवसो की बातें सारी,
गूगी बनकर बैठी होगी सुन घन का गजन भारी।
या वह बैठी कात रही होगी चर्खा घन-घनन-घनन,
झुक झुक पडती होगी उसकी पलको पर निद्रा क्षण-क्षण।

आओ आज पिएँ मधु जी भर बिना हुए मन मे भयभीत,
नौजवान के दुख-दर्दों की एक अकेली मदिरा मीत।
प्याला भर दो, आज वेदना माँग रही फिर मधु का दान,
एक बार फिर से अधरो के ऊपर छाएगी मुसकान!
आओ गाएँ गीत कि जिसमे एक अनोखा राजकुमार
सदा लगाए रहता अपनी आँखे रत्नाकर के पार,
या, आओ, मिलकर वह गाएँ गीत, सुरा के प्याले ढाल,
जिसमे एक छबीली जाती जल भरने को प्रात काल।

ले वर्फीले वात-बवडर, बीहड बादल, विज्जु वितान,
काले-काले आसमान मे चढता आता है तूफान,
लगता कभी कि गर्जन करता कोई जगल का हैवान,
और कभी ऐसा लगता है रोता कोई शिशु नादान।

ग्राग्रो ग्राज पिएँ मधु जी भर बिना हुए मन मे भयभीत
नौजवान के दुख दर्दो की एक ग्रकेली मदिरा मीत।
प्याला भर दो,ग्राज वेदना माग रही फिर मधु का दान,
एक वार फिर से ग्रधरो के ऊपर छाएगी मुसकान !

८ | जाडे की सुबह

अद्‌भुत प्रात ! बिछा भी कुहरा, छाया भी रवि-रश्मि वितान!
पर जीवन के सुखमय साथी, अब भी तुम निद्रा लयमान ।
यह वह वेला है सुदरता जब लेती है अँगडाई,
खोलो नयन, उघारो पलकें, जो निद्रा से गरुआई।
युगल नयन तारक चमकाओ उत्तर से, मन की रानी !
उत्तर के नभ मे करने को अरुणोदय की अगवानी।

रात भयकर आधी ने था अबर मे डेरा डाला,
और पडा था सारी पथ्वी के ऊपर गहरा पाला,
मुक्त न था धूसर बादल से नभ-मडल का कोई भाग,
चद्र दिखाई पडता था यो जैसे कोई पीला दाग।
ले गभीर उदासी बैठी थी तुम सिर को नीचा कर,
लेकिन अब तो उठकर देखो अपनी खिडकी के बाहर !

निर्मल नील गगन के नीचे फैली है हिम की चादर,
सूरज की चटकीली किरणे पडती उसपर आ आकर,
धरती दिखलाई पडती है पहने मणिमय पाटबर।

छिपे धवल-निमल परदो के पीछे है जगल काले,
पेड सनोवर के लगते हैं कुहरे में भी हरियाले,
हिम की परतो के नीचे है बहते चमकीले नाले।

हर कमरे के भीतर फैला पीत सुनहला उजियाला,
बुझी अँगीठी के अदर से उठती, देखो, फिर ज्वाला,
जल 'चट-चट' कर, हर्ष प्रकट कर, ताप सुहाना फैलाती,
कितना सुदर, बठ यहाँ पर देखे सपनो की पाती,
किंतु न क्या इससे यह अच्छा होगा मँगवाएँ जोडी,
और जुताएँ उसमे बढिया बादामी रँग की घोडी।

प्रातकाल की उजली-चिकनी बिछी बरफ पर से होकर,
आओ जीवन के प्रिय साथी, दूर चले हम-तुम सत्वर,
चचल घोडो को बढने दें सरपट, कर दें ढीली रास,
चलो चलें उन सूने खेतो मे जिनमे फैली है घास,
जगल मे, जिनमे गरमी मे भी न किसी ने पग धारे,
और नदी-तट पर, जो मुझको है सब जगहो से प्यारे!

९ | बादल

ओ अंतिम बादल झंझा के, टूट चुका है जिसका बल,
धुले हुए नीले अंबर पर घूम रहे क्यों तुम केवल,
क्यों विषाद की छाया बनकर अब भी हो तुम अड़े हुए,
क्यों दिन के ज्योतिमय आनन पर कलंक बन पड़े हुए?

प्रलय मचा रक्खी थी तुमने अभी-अभी गगनांगन में,
भयप्रद विद्युत माला तुमने लिपटा रक्खी थी तन में,
दिग्दिगंत प्रतिध्वनित वज्र का व्यग्र गान तुम गाते थे,
ग्रीष्म प्रतापित पृथ्वी तल पर झर-झर जल बरसाते थे।

अलम् और अलविदा तुम्हें, अब नहीं तुम्हारे बल का काम,
बरस चुका जल, सरस धरातल शीतल करता है विश्राम,
और समीरण जो चलता है सहलाता तरुवर के पात,
तुम्हें उड़ाकर ले जाएगा नभ से, जो अब निर्मल-शांत।

१० | भावो की चिनगारी

जारजियन[1] गिरि पर है रजनी अपनी चादर फैलाती,
मेरे मन को बहलाने को मद-मधुर सरिता गाती,
औ' मेरी पलको के ऊपर दुख की बदली घिर आती,
आंखो मे तुम, इससे उनकी ज्योति नही घटने पाती।
आखो मे तुम, अतर मे तुम, पीडा तो अवगुठन है,
शात बना रक्खा इस पीडा ने जगती का क्रदन है।
दिल के अदर जब तक उठती है भावो की चिनगारी,
प्यार करेगा, क्षार बनेगा! देखो उसकी लाचारी!

---

१ रूस की एक शृंगमाला

११ | तातियाना[1] का पत्र

अब जब मैं यह पत्र तुम्हे लिखने बैठी हूँ
सब कह दूगी, और तुम्हे अब आजादी है
मुझे करो तुम घृणा, मुझे दडित करने को,
नही जानती, इससे बढकर क्या हो सकता।
पर यदि मेरे लिए तुम्हारे अदर करुणा
का कोई कण कही शेष है, तो तुम मुझको
नि सहाय, एकाकी छोड नही जाओगे।

तुम मेरा विश्वास करोगे?—पहले मैंने
यह सोचा था, एक शब्द भी नही कहूँगी।
यदि मैं ऐसा कर सकती तो मेरी लाज
ढकी रह जाती, कौन मुझे अपराधी कहता
देख तुम्हे यदि क्षण भर लेती, या सुन लेती
तुमको औरो से बतियाते, या दो बाते
खुद कर लेती हफ्ते मे जब एक बार तुम

---

१ कुमारी कन्या का नाम विशेष

आते मेरे गाँव, तुम्ही मे ध्यान रमाए
रात काटती, दिवस बिताती, बाट जोहती,
जब तक तुम अगले हफ्ते फिर गाव न आते।
मिलनसार तुम नही, यहा पर कुछ कहते है,
गाँवो का एकात नही तुमको भाता है।
हमे दिखावा करना आता नही, तुम्हे, पर,
यहा देखकर सदा खुशी हमको होती थी।
तुम क्यो आए ? और हमारे पास किसलिए ?
इस अनजानी, भूली-बिसरी-सी कुटिया मे
पडी अकेली मैं न जानती तुम्ह कभी भी,
नही कभी भी विरह-वेदना, जो तुमने दी।
मृदुल भावनाएँ सब मेरी सोती रहती,
मन मेरा भोलेपन का धन सेता रहता,
—इस प्रकार से दिवस बिताते शायद ऐसा
दिन भी आता, कोई पति मुझको मिल जाता
मेरे मन का, और उसी की मैं बन जाती
प्रिय परिणीता, और किसी दिन बडे मान से,
बडे गर्व से माता बनती कोमल-पावन।
"और उसी की !"—नही कभी भी, नही किसी भी
अन्य पुरुष को मैं अपने को अर्पित करती !
परम पिता परमेश्वर की ऐसी इच्छा थी,
मेरा भाग्य पूर्व-निश्चित था —मैं तेरी हूँ !
मेरे जीवन का सारा अतीत आश्वासन-
सा देता था कि हम मिलेंगे, साथ बँधेंगे,

परमेश्वर ने इसीलिए तुझको भेजा था,
तू मुझको देखे, अपनाए, और मरण की
अंतिम शय्या तक तू मेरा सरक्षक हो।

तू अक्सर मेरे सपनो मे भी आता था,
प्रिय लगता था, गो न जानती थी मैं तुझको,
बहुत दिनो से तेरे स्वर से मेरे तन की
शिरा-शिरा झकृत होती थी, तेरी आखें
मुझे लुभाती, मत्रमुग्ध मुझको करती थी,
लेकिन यह न समझ, मैं सपना देख रही थी।
जब तू आता था सपना सच हो जाता था,
मैं पहचान तुझे लेती थी, मेरे तन मे
बिजली कौंध उठा करती थी, और ठिठककर
जहा की तहाँ खडी रहा करती थी सकुचा,
मेरा दिल मुझसे कहता था, "वह आ पहुँचा!"

इसमे कुछ भी झूठ नही, जैसे पहले के
विश्वासी सूने मे आवाजें सुनते थे,
वैसे ही मैं तेरे शब्द सुना करती थी—
तुझे सुना करती थी उन नीरव घडियो मे
जब कि गाव के दीनो, दुखियो की परिचर्या
मे रहती थी, या जब अपने भारी मन को
हल्का करने को प्रार्थना किया करती थी।
और आज क्या वही नही तू, जो आता था

चमक चीर घन अधकार मेरी रातो का,
ओ' मेरे तकिये के ऊपर झुक जाता था ?
ठीक स्वप्न की मधुर मूर्ति फिर आगे आई।
देवदूत-सा क्या तू मेरा सरक्षक है ?
या तू मुझको धोखा देनेवाली छलना ?
मेरे भ्रम को, सदेहो को दूर हटा दे,
हो सकता है इसमे कोई सार नही है,
यह केवल नादान हृदय का सन्निपात है,
और भाग्य ने कुछ विपरीत विरच रक्खा है,
लेकिन यदि ऐसा भी हो तो, इस क्षण से मैं
अपने को, अपनी किस्मत को, तेरे हाथो
सौप रही हूँ, रोती हूँ आ तेरे आगे,
विनती करती हू तू ही मेरी रक्षा कर।

जरा ध्यान दे, यहा अकेली पडी हुई हूँ,
कोई नही समझता मुझको, काम न देता
है दिमाग मेरा, कमजोरी, बेचैनी है।
अगर न खोलू मुँह खोई-खोई रहती हूँ।
मुझको एक प्रतीक्षा तेरी, तेरी चितवन
एक जगा देगी मेरी उन आशाओ को
जो मेरे अतर मे सोई, मतप्राय है,
या तेरी भत्सना एक उस स्वप्न-जाल को
खड-खड कर देगी जो मुझको घेरे है।
मेरे प्रति ऐसा व्यवहार उचित ही होगा।

ग्रौर नही ग्रब कुछ कहना है, जो लिख डाला
उसको पढते हुए मुझे खुद डर लगता है,
ग्लानि ग्रौर लज्जा मे मैं डूबी जाती हूँ,
मुझे बचा सकती है तो बस तेरी करुणा,
मुझे भरोसा उसका ही है, ग्ररी लेखनी,
लिख दे मेरा नाम ग्रगर साहस रखती है,
कुछ न छिपाया जिसमे उससे कैसा डरना ।

१२ | सुदरता की शक्ति

मैंने सोचा था मेरा दिल शात हुआ ऐसा बुझकर
मधुर प्रणय की ज्वाला इसमे कभी नही जल पाएगी,
मैंने कहा कि बीती घडिया, अत हुआ जिनका सत्वर,
नही पलटकर आएँगी फिर, नही पलटकर आएँगी ।

दूर गए उल्लास पुराने, दूर गई अभिलाषाएँ,
दूर गए मनमोहक सपने जो थे आभा के आगार ।
किन्तु सोचता था मैं जब यह लौट सभी तो वे आए,
उन्हे लिया था सुदरता ने अपने बल से पुन पुकार ।

१३ | प्रार्थना

जग के सकट - सघर्षों मे मन को सुदृढ बनाने को,
और हृदय को स्वर्गपुरी की ड्योढी तक पहुँचाने को,

भक्तो ने, भक्तिनियो ने भी, जिनके काम चरित्र पुनीत
लिख लिख गाए और सुनाए हैं कितने ही पावन गीत।

लेकिन उन अगणित गीतो में, भजन-पदो म केवल एक
है ऐसा जिससे होता है मुझमे भावो का उद्रेक।

उपवासो की, पश्चात्तापो की, तिथिया जब आती हैं,
वही प्राथना तब हर गिरजे मे दुहराई जाती है।

वही प्रार्थना उठा करेगी मेरे उर से बारबार,
वही करेगी मेरे निबल मानस में बल का सचार —

"ओ मेरी श्वासो के स्वामी! दो मुझको ऐसा वरदान,
मेरे निकट न फटके आलस और निराशा का शैतान।

मन से कटकर जीभ न रटती जाए घटवासी का नाम,
करे नही विषयो का विषधर मेरे मन को अपना धाम।

अपने भाई की भूलो की ओर न जाए मेरा ध्यान,
किंतु न अपने अपराधो को कभी करूँ मैं क्षमा प्रदान।

जाग्रत हो मेरे अतर में भाव समपण का, भगवान !
प्रेम, तपस्या, पावनता मे देखू मैं अपना कल्याण।"

१४ | बुद्धि

मुझसे मेरी बुद्धि न छीनो, विनती करता हूँ, भगवान,
जो सकता श्रम सहकर, भूखा रहकर, लेकर भिक्षा-दान,
बुद्धि बिना पर कब कल्याण ?

मेरी बुद्धि नही, गो, ऐसी जिसपर हो मुझको अभिमान,
कोई मान सके तो, होगा इससे मुझको हर्ष महान,
यदि मैं इससे पाऊँ त्राण।

दुनिया अपने प्रतिबधो से यदि कर दे मुझको आजाद,
करने दे मुझको जो चाहूँ तो भर अतर मे आह्लाद,
मैं भागूँगा बन की ओर।

और वहाँ डालूगा अपने सपनो का तूफानी दोल,
और अग्नि गीतो को गाता अपने कठ अकुठित खोल
हो जाऊँगा आत्म-विभोर।

वहाँ बैठकर सुना करूँगा निर्मल झरनो का गाना,
हर्ष-प्रफुल्लित, पुलकित मन से जब चाहूँगा मनमाना
ताकूगा नव नील गगन,

लेंगी होड प्रबल झझा मे तब मेरी सासें स्वच्छद,
जो हरहर मरमर कर बहती है मदानो पर निर्द्वंद,
और झुमा देती कानन।

बुद्धि विकृति यदि हो जाए तो, यह दुनिया है ऐसी क्रूर,
तुमको रखगी अपने से सक्रामक रोगी-सा दूर,
तुमको जकडेंगे बधन।

दुनियावाले जजीरो से हाथ-पाव दोनो कसकर,
ठेल तुम्हे देंगे ले जाकर पागलखाने के अदर,
पशुओ सा होगा जीवन।

पागल साथी वहा रहेगे करते हरदम चीख-पुकार,
और सुनाई देगी रातो को रखवारो की फटकार,
और बेडियो की झनझन।

कभी नही फिर सुन पाओगे तुम बुलबुल का मजुल राग
जिससे रजनी की छाया मे गुजित होता हर वन-बाग,
वन्य विहगो का गायन!

१५ | जीवन

मुझको यह मालूम नही है क्यो यह जीवन का वरदान
मुझे अचानक दिया गया है, जो इसके गुण से अनजान।
मुझको यह मालूम नही है क्यो करके इसका निर्माण
अध नियति ने मृत्यु-लक्ष्य की ओर किया इसको गतिमान।

किस निदय, किस मनमानी ने सूनेपन का पर्दा फाड
आदिहीन तद्रा निद्रा से मुझको सहसा लिया पुकार।
किसने मेरे मन के अदर भर दी भावो की ज्वाला,
किसने ले मस्तिष्क उसे शत शकाओ से मथ डाला।

नही दिखाई देता मुझको नयनो के आगे कुछ ध्येय,
मन को प्रेय नही मिलता है, बुद्धि नही पाती है श्रेय,
गजन करता है जीवन का मेरे पीछे नित्य अभाव,
बने हुए है मेरे मन के ऊपर उसके शत-शत घाव।

१६ | स्मृतियाँ

जबकि नगर के लेन देन का, दौड धूप का सारा शोर
पड जाता है मद और सडको औ' बागो के ऊपर,
गिर जाता है निशि की पलको का पर्दा हो नीद-विभोर—
नीद, छुडाती जो मानव को जग चिंताओ से भू पर।
किंतु रात मे मुझको आती नीद न मिलता है विश्राम,
एक भीड दु खद घडियो की विस्मृति से सहसा उठकर
धीरे-धीरे घुसती जाती मेरी छाती मे अविराम,
और निगलने लगती उसको, जसे विषदती अजगर।
मूर्तिमान मेरा भय होता, और वेदनाओ की धार
थके हुए मेरे दिमाग पर उठ-उठ करती है आघात,
और खालकर सुधि फिर अपना बीती बातो का भडार,
मुझे सुनाती कथा कि जिसका मुझको अक्षर अक्षर ज्ञात।
सुन अतीत की गाथा अपनी मैं होता शकित, लज्जित,
और भीत कपित हो देता अपने को अभिशाप अनेक,
पश्चात्ताप भरे आँसू से होते मेरे नेत्र स्रवित,
किंतु समथ न होते धोने मे वे उसका अक्षर एक।

१७ | एक रात

नीद नही मुझको आती है, दीप नही कोई जलता,
चारो ओर घिरा जो मेरे अँधियाला मुझको खलता,
खट-खुट की आवाजें कितनी आती कानो मे मेरे,
रात नापने को बैठी हैं घडियाँ ज्या मुझको घेरे।

भाग्य देवियो, छेड पुराना बैठी हो पचडा-परपच,
नीद नशीली, झोको वाली होती यह रस-रात, वरच,
चूहे जैसे काट-कुतर की करते रातो मे आवाज,
वैसी ही ध्वनियो से जीवन करता है मुझको नासाज़।

बतलाओ मतलब है क्या इन धीमी-धीमी बातो का,
ईश्वर जाने क्या शिकवा है इन दुखियारी रातो का।
क्या न बताओगी यह मुझसे तुम किस चितन मे रहती,
मुझको आमत्रित करती या बात भविष्यत् की कहती।
हाय, बताए कोई आकर मुझको शब्दो के माने,
जो कानो म कहती रहती रात अँधेरी अनजाने !

१८ | दुर्दिन

स्वप्न मिले मिट्टी में कब के,
और हौसले बैठे हार,
आग बची है केवल अब तो
फूंक हृदय जो करती क्षार।

भाग्य कुटिल के तूफानो में
उजडा मेरा मधुर वसंत,
हूँ बिसूरता बैठ अकेला
आ पहुँचा क्या मेरा अंत।

शीत वायु के अंतिम झोके
का सहकर मानो अभिशाप,
एक अकेली नग्न डाल पर
पत्ता एक रहा हो काप।

१६ | शोकगीत

उतर चली यौवन की मदिरा अब तो शेष खुमारी है,
पागल घडियो की रँगरलियो की सुधि मन पर भारी है,
सुरा पुरानी जितनी होती उतनी ही मादक होती,
याद पुरानी जितनी होती उतनी ही घातक होती।

अधकारमय मेरा पथ है और भविष्यत् का सागर
गजन करता मेरे आगे बन विपदाओ का आकर,
लेकिन, भाई, मुझे नही है फिर भी मरने की अभिलाष,
घटी नही मेरी जीवन को, सपनो की, पीडा की प्यास।

मैं चिताओ और व्यथाओ और वेदनाओ, के बीच,
सुख के अश्रु कणो से अपना मुर्झाया मुख लूगा सीच,
एक बार फिर पागल होकर गाऊँगा मैं स्वर्गिक गान,
एक बार फिर स्वप्न करेंगे मेरे दृग स्रोतो से स्नान।

औ' जीवन की अतिम बेला आएगी जब पास, उदास,
प्रणय विदा की मुसकानो से रजित कर देगा आकाश।

२० | अंतिम चाह[1]

चाहे चलता हूँ सडको पर जिनपर नागरिको का शोर,
चाहे चलता हू राहो पर जो जाते गिरजे की ओर,
चाहे बैठू वहा जहा पर यौवन करता है अभिसार,
मेरे मन के अन्दर उठने लगते है इस भाति विचार—

देखो, कितनी जल्दी बीते जाते है सालो पर साल,
डाल चुका है, देखो, कितनो को अपने गालो मे काल,
चली जा रही है सब दुनिया यम के पुर को आखे मूंद,
देखो, कितनो के पावो के नीचे है मजिल मकसूद।

---

१ १९५४ म जब यह कविता आकाशवाणी केंद्र, इलाहाबाद से प्रसारित हुइ थी तब इसके साथ यह टिप्पणी दी गई थी

मानव जीवन की क्षणभगुरता का ध्यान आते ही मन मे अवसाद भर जाता है और किसी न किसी प्रकार अपने को अमर बनाने का विचार जी को व्याकुल कर देता है। यह ऐसा भाव है जो देश-काल के बधन से परे सवत्र मिलता है। पूश्किन ने अपनी इस रचना मे यही भाव व्यक्त किया है। पर यह जानते हुए भी कि एक दिन इस जीवन का अत होना ही है कवि दुखी नही होता, वरन वह भविष्य के प्रति अपनी शुभ कामनाएँ अर्पित करता है।

देग रहा हूँ एक पेड़ जो खड़ा सामने तना घना,
ग्रौर सोचता हूँ यह युग-युग तक रहने के हेतु बना,
मैं मृत-विस्मृत हूँगा, इसम पत्र लगेंगे नए-नए,
पिता पितामह भी तो मेरे होंगे योंही सोच गए।

फैला हाथ उठा लेता हूँ गोदी में शिशु ललित, ललाम,
ग्रौर कहा करता हूँ उससे, "तुमको मेरा विदा-प्रणाम,
ध्वनित करोगे तुम घर जिसको मैं कर जाऊँगा सुनसान,
खिलते जाते दिवस तुम्हारे, मेरे होते जाते म्लान।"

प्रति पल, प्रति दिन ग्रौर प्रति निशा, प्रति सप्ताह ग्रौर प्रति मास,
मुझे ध्यान रहता है इसका मौत चली ग्राती है पास,
ग्रौ' पूछा करता ग्रपने से कब ग्रा पहुँचेगा वह काल
जबकि गले मेरे डालेगी वह ग्रपनी बाहों का जाल।

मेरा ग्रंत कहाँ ग्रा मुझको बाँधेगा भुज-बंधन में,
दूर देश में, वन-विदेश में, सागर या समरांगण में,
या समीप की घाटी कोई मुझको पकड़ बुलाएगी,
ग्रौर हरण कर प्राण बदन पर हिम का कफन उढ़ाएगी।

इसकी कुछ परवाह नहीं है कहाँ छूटता मेरा प्राण,
कहाँ उसे मिलता है विजडित काया के बंधन से त्राण,
लेकिन किसे नहीं होता है ग्रपनी ड्योढ़ी से ग्रनुराग,
मौत मिलेगी मुझे वहीं, यदि होगा मेरा ऐसा भाग।

यही चाहना केवल, मेरी कब्रगाह के चारो ओर,
खेल रहे हो, कूद रहे हो हँसमुख बच्चे हर्ष विभोर,
और प्रकृति निज आँगन साजे ऐसी छवि से अतुल, अनत,
एक बार जिसमे आकर फिर जाना जाए भूल बसत।

२१ | यादगार

मैंने अपनी यादगार ली बना, नहीं पर हाथों से,
होगी इसकी पूजा दुनिया भर के झुकते माथों से,
देखो यह नभ मे गर्वोन्नत अपना शीश उठाती है,
इसके नीचे खड़ी सिकदर की मीनार लजाती है।

मूक बना दे मौत मुझे पर वीणा तो होगी वाचाल,
मुझे वहाँ पर पहुँचाएगी जहाँ नही जा सकता काल,
एक सुकवि का भी वसुधा पर जब तक शेष रहेगा धाम,
बजा करेगी मेरी वीणा, जगा करेगा मेरा नाम।

रूस देश की विस्तृत पृथिवी मेरी कीर्ति गुंजाएगी,
हर सजीव भाषा मानव की मेरी कविता गाएगी,
स्लाव[1] और फिन, कलमुक, तुगुस की मैं अभिमानी सतान,
जिनके गौरव की गाथा से परिचित है रूसी मैदान।

---

१ रूस मे बसी हुई जातियाँ

युग-युग तक सब राष्ट्र जातियां देंगी मुझको आदर मान,
क्योकि विशद भावो की प्रेरक है मेरी वीणा की तान,
जालिम घडियो मे गाया है मैंने आज़ादी का राग,
और सताए लोगो के प्रति न्याय दया की रक्खी माग।

अबर के अनुशासन पर चल, वाणी, सुन उसकी आवाज़,
बदगोई से सीख न डरना, नामवरी का मांग न ताज,
निंदा और सुयश से अपने कान मूद ले, मुह मत खोल,
मुख के अदर ही मुखरित हो मिट जाते मढो के बोल!

२२ | कवि

ओ भोली-भाली सुकुमारी,
कवि को अपना कभी न कहना,
और कभी भी तुम उसका विश्वास न करना,
तुम पर क्रोध करे तो डरना, क्या न डरोगी ?
लेकिन तुमको प्यार करे तो ज़्यादा डरना।

उसके पास न जाना, उससे ब्याह न करना,
सोच, कि दो हृदयो का मधुमय गठबधन है
प्यार हमारा,
बाँधोगी अपने झीने-झीने आचल मे,
कुसुम-कुमारी,
एक दहकता सा अगारा।

उसके भाव विचारो में तूफान मचलते
पर उसका अधिकार न कुछ भी
अपने ऊपर,
उसके सिर को घेर रही जो विद्युत-माला

भस्म तुम्हारे कुतल होगे
उसको छूकर।

दुनिया अघी है जो उसको साधु समझती
और बाद को उसकी निदा
करती फिरती,
उसके मुख मे नही सर्प का दत विषैला
किंतु भ्रमर की जीभ कि जिससे
रसमय कलियो के उर की पखुरियाँ चिरती।
डरो न इसको सोच
कि कवि अपने हाथो से
कभी तुम्हारा पावन अवगुठन फाडेगा।
वह अनजाने-अनजाने मे
कभी तुम्हारा गला घोटकर
तुम्हें बादलो से भी ऊपर पहुँचा देगा।

२३ | पुरानी चिट्ठियाँ

वह बैठी थी धरती पर, उसके आगे थी
पत्रो की ढेरी जिनको वह फाड फाडकर
फेक रही थी, क्योकि आग जो दहक रही थी
उनके अदर, अब ठडी थी।

परिचित अक्षर और पक्तियो को वह बैठी
एक अजनबी की आँखो से देख रही थी,
मृतको की आत्माएँ जैसे देख रही हो
अपने चोले जिनमे पहले वे बसती थी।

इन पत्रो मे उसका कितना कुछ था जिसको
वह विनष्ट कर बिसरा देना चाह रही थी—
वे मधुमय क्षण जो अतीत मे समा गए थे,
प्यार-खुशी की घडियाँ जो सुधि मे सचित थी।

मैं उदास-चुपचाप खडा देखता रहा यह,
काँप रहे थे घुटने औ' दिल बैठ रहा था,
लगता था मेरी पलको के ऊपर कोई
काली छाया उतर रही है।

२४ | शांति

मुख से कोई शब्द न निकले।
दिन-प्रतिदिन जो भाव-विचार उठा करते है
उन्हे छिपाओ।
वे रजनी मे नक्षत्रो की तरह उदित हो,
प्रभा बिखेरें और अस्त हो—
अनाहूत, अनसुने, अनसराहे।
तुम उनपर आंख लगाओ,
बलि जाओ,
पर मुख से कोई शब्द न निकले।

हृदय हृदय से कब शब्दो मे बोला करता ?
शब्द और सगीत कहा विश्वास जगाते,
जिसके बल पर हम जी सकते, मर सकते है ?
हर विचार जो व्यक्त हो गया भूठ निकलता।
धारा को अटूट बहने दो,
स्वच्छ तथा निर्मल रहने दो,
हाथो से जल को मत हलकोरो, छलकाओ,

ओठ लगाकर पीते जाओ,
मुख से कोई शब्द न निकले।

अपने अंदर धँसो,
रहो परियों की या जादुई कल्पना की दुनिया में
जहाँ जगत का हल्ला-गुल्ला नहीं पहुँचता,
और जहाँ के रहम राग के लिए
धरा के कान बधिर है।
उनको अनको,
वारो मन को,
मुख से कोई शब्द न निकले।

२५ | मजदूर और मसीह

पूरे दिन, जब तक उसके हाथो मे बल था,
वह हलवाहा भारी हल को धीरज धरकर
चला रहा था, उलट रहा था
बडे बडे माटी के ढोके
जिनके ऊपर घास उगी थी,
बना रहा था लबे-गहरे खूड खेत में।

"उफ ! जब मुझको घेरे निदय घृणा खडी थी,
मेरे पौरुष-हिम्मत पर ताने कसती थी,
मेरी मेहनत पर हँसती थी,
भूत की तरह दिए काम मे जुता हुआ था,
पर अब चूर हुआ हूँ थककर,
चूर हुआ हूँ !

अब मुझको आराम चाहिए !
काश, निदारे मैदानो मे
छायावाले तरुवर होते जिनकी डालें

मेरी स्वेद-सनी काया के ऊपर
मेहराबो-सी झुकती
जिनके नीचे कल कल करती धारा बहती !

काश कि क्षण भर
उस छाया मे, उस धारा के ऊपर झुककर
प्यास बुझाता, लबी ठडी सास खीचता,
जैसे नभ की साध्य गध भी पी जाऊँगा।
काश कि जल से अजलि भर-भर
सिर माथे का गद-पसीना धोता,
अपनी चिंताओ का भार हटाता !"

"बडा मूर्ख है ! छाया तेरे लिए नहीं है !
तुझे नही आराम बदा है ! काम किए जा !
करता ही जा।
डाल नजर खेतो पर कितना कुछ करने को !
कितना थोडा समय बचा है !
उठ ! न पराजित हो तू अपनी कमजोरी से !
तेरे स्वामी की आज्ञा है !
उठ ! फिर अपना काम शुरू कर।

तुझे खरीदा था मैंने भारी कीमत पर,
उस सलीब से जिसपर मैंने अपना जीवन-रक्त दिया था !
हलवाहे, जो काम बताया मैने तुझको

तू कर उसको शीश झुकाकर,
मेहनतकश, मेहनत कर कसकर अनथक दिन भर!"

"प्रभु, तेरी इच्छा के आगे मैं नत-मस्तक,
कपित, अर्पित!
तेरे अज्ञानी सेवक ने जो प्रमाद-वश कह डाला था
तेरी न्याय-पुस्तिका मे मत हो वह अंकित।

जो तेरा आदेश करूँगा उसको पूरा
स्वेद और श्रम से वे हारे,
मैं न थकूगा, मैं न झुकाऊँगा पलको को
लगा न पाता जब तक तेरा काम किनारे।

अब तेरा सेवक आलस-वश कभी न होगा,
हाथ हटाएगा न कभी हल के हत्थे से,
भली भाति उन खेतो को तैयार करेगा
जिनमे तेरे वरद करो से बीज पडेगा।"

२६ | बुलबुल

इस गुलाब की सुदरता पर
यह बुलबुल मदमाती है,
जब देखो तब उसपर झुककर
मधुमय गीत सुनाती है।

यह अपने भोले स्वप्नो म
सोया-खोया रहता है,
धुन सुनता है, नही समझता
गीत व्यथा जो कहता है।

कवि अपने मन की वीणा पर
मधुमय राग बजाता है,
अपनी विरहाकुल घडियो का
ध्वनिमय चित्र बनाता है।

उसके दिल की हर धडकन को
कह देती उसकी वाणी,

पर सुनकर भी नही समझती
उसकी भोली दिलजानी।

"किसके हित", वह बाला पूछा
करती है, "तुम गाते हो ?
वह है कौन कि जिसको अपना
दुखमय गीत सुनाते हो ?"

२७ | वृद्ध का गीत

मैं घोड़े पर ज़ीन कसूंगा—
बड़ा तेज़ मेरा घोड़ा है—
उसको सरपट दौड़ाऊँगा,
तेज़ बाज़ की तरह उड़ेगा,
जल पर होता, थल पर होता,
दूर देश को—
परी-देश को ले जाएगा।
वहाँ पुकारूँगा अपने खोए यौवन को,
वह लौटेगा।
यौवन को पाकर फिर
मैं मजबूत बनूंगा,
दिव्य स्वर्ग का दूत बनूंगा।
फिर मुझपर स्वर्गिक सुन्दरियाँ
मोहित होंगी!
तब मुझमें क्या भाव जगेंगे?
पर जो सुधि के पार गया

उसका पथ कोई,
हाय, नहीं बतला पाएगा।
कभी नहीं सूरज पच्छिम से
अपना मुखड़ा दिखलाएगा।

२८ | पोत

फेन भरे सागर के ऊपर नील कुहासा,
जिसे चीरता श्वेत पाल ऊपर उठता है,
दूर देश में क्या है जिसके लिए पोत भागा जाता है?
पास भला क्या ऐसा जिससे भाग रहा है?

पवन झकोरे लेता है, लहरें लहराती,
चरमर कर मस्तूल बढ़ा आगे जाता है,
सुख को पीछे छोड़ न यह जाता है आगे
और न सुख के पीछे ही यह भाग रहा है।

हरी फेन स भरी तरगें नीचे उठती,
किरण सुनहरी सूरज की ऊपर बिखरी हैं,
पोत होड ले रहा निरतर तूफानो से
जैसे तूफानो मे ही सब शाति भरी है।

२६ | स्वर्गदूत

एक रात को नील गगन मे स्वगदूत उडता जाता था
श्रौर साथ ही मदस्वर मे एक गीत गाता जाता था।
चाँद, सितारे, बादल--सब आश्चय चकित हो
सुनते थे जो गीत स्वग का वह गाता था।

वह गाता था उनकी गाथा भाग्यवान जो दिव्य वेश में
प्रभु के मधुवन मे रहते हैं, जिनसे रहता पाप अजाना,
वह गाता था प्रभु की महिमा मुक्त कठ से
क्योंकि भीति-विद्वेष-मुक्त था उसका गाना।

लिए हुए था अपनी गोदी म वह छोटा जीव कि जिसका
जन्म जल्द होनेवाला था इस कलक से भरी धरा पर,
स्वर्गदूत का गीत याद हो गया जीव को,
गीत, कि जिसमे शब्द नही थे और न अक्षर।

जीवन की भारी घडियो मे गीत स्वग का दुहराने को,
सुन पाने को, एक विचित्र व्यथा उठती थी उसके मन में,
किंतु गीत वह याद नही उसको आता था
इस धरती के दु ख-शोक-सकुल क्रदन मे।

३० | जीवन का प्याला

अभी हमारी आखो पर परदा ही पडा हुआ रहता है
औ' हम जीवन प्याले से पीने लगते हैं,
और हमारे ही रोदन के अश्रु कणो से
इस अद्‌भुत कचन-प्याले की कोर भीगती।

औ' जब आँखो पर से परदा हट जाता है—
जैसे आकर मौत सामने खडी हो गई—
तब परदे के साथ भेद सब खुल जाता है,
क्या था वह जादू जो सिर पर चढा हुआ था।

हाय, हमें तब अनुभव होता, चमक रहा था
जो कचन का प्याला वह अस्तित्वहीन था,
भरा हुआ था वह जिससे केवल सपना था,
और स्वप्न भी नही हमारी आखो का था।

३१ | बंदी

छू रहा है सूर्य पच्छिम के क्षितिज को,
दूर पर जो घास, कचन-सी चमकती,
धूलिमय पथ से गुजरते बदियो की
शृ खलाएँ झनझनाती ।

सिर मुंडे उनके, चले वे जा रहे हैं,
थके पावो को उठाते औ' बढाते,
मस्तको पर वेदना की हैं लकीरें
औ' दिलो मे धडकनें सदेह की है ।

वे चले ही जा रहे, परछाइयाँ उनकी बढी ही जा रही हैं,
सिर झुकाए जानवर दो एक गाडी खीचते है,
एक पहरेदार जिसमे ऊँघता-सा
जा रहा कुछ फासले पर ।

(एक बदी बोलता है)
"भाइयो, गाएँ न मिलकर गीत कोई ?

श्रौर क्षणभर के लिए दुर्भाग्य अपना भूल जाएँ !
जन्म जब हमने लिया था,
तभी विधि ने लिख दिया था,
हम बड़े हो तो बड़ा ही कष्ट पाएँ !"

साथ मिलकर एक धुन वे छेडते हैं
श्रौर फिर धुन गीत मे है फट पडती, गीत जिसमे
दिन बड़े सुख-चैन के हैं
श्रौर मौसम है सुहाना
श्रौर लबा एक दरिया दूर तक स्वच्छद बहता जा रहा है ।

श्रौर वे स्वाधीनता का श्रौ' खुले मैदान का हैं गीत गाते,
श्रौर ऐसी श्रान का जिसको झुका दुनिया न पाती ।
ढल रहा दिन, श्रौर पथ पर बदियो की
शृ खलाएँ झनझनाती चली जाती ।

३२ | अंधा पादरी।

हो गई थी साँझ, कँकरीली सडक सूनी पडी थी,
बीद[1], अंधे पादरी, ने वस्त्र जो थे पास पहने,
एक लडके की उँगलियो का सहारा लिया,
नगे पाँव ही वह चल पडा उपदेश देने,
हवा मे उसका फटा ढीला लबादा लगा उडने।

जगली निर्जन डगर अब और सूनी औ' भयानक हो चली थी—
यहाँ झाखड, वहा कोई ठूठ, कोई पेड कद्दावर, पुराना,
इधर टीला, उधर कोई बडी-सी चट्टान
आगे को झुकी, काई ढकी, जमे पकी
अपनी उमर बतला रही हो।

और लडका थक गया था। या दिखाई दे गई थी
उसे मीठे बेर की झाडी निकट ही।
या कि अंधे पादरी से महज एक मजाक करने की गरज से

१ नाम विशेष

कहा उसने, "मैं जरा आराम कर लूँ,
आपके उपदेश देने का समय अब आ गया है,
शुरू कर दें अगर चाहें।

ग्रामवालो ने पहाडी से लिया था देख हमको इधर आते,
औरतें बैठी प्रतीक्षा कर रही हैं,
सडक के दोनो तरफ है खडी बच्चो की कतारें,
और कितने बडे-बूढे! —आप इनसे
आसमानी बाप का गुण गान करिए,
और उसके पुत्र का, जो हम सबो का पाप धोने के लिए
बलि हो गया था।"

पादरी के झुरियो से भरे चेहरे पर अचानक चमक आई,
जिस तरह दृढ वक्ष गिरि का चीरकर के
बद जल का स्रोत बाहर निकल पडता,
पादरी के सूखते-से कठ से उद्भूत
वाणी प्रेरणामय लगी बहने।

बैठ उसकी जीभ पर क्या आस्था बोली स्वय थी?
आँख अधी पढ रही थी क्या गगन के पार का अभिलेख कोई?
श्वेत केशो से घिरा चेहरा नबी की भाति ऊपर को उठा था,
और उसके अध कोयो मे छलकते अश्रुकण थे झलमलाते।

चाद पीला पवतो के पार अब ढलने लगा था,
स्वण वर्णी लालिमा पूरव दिशा से झाँकती थी,

रात-उतरी ग्रोस निचली घाटियो मे भड चली थी,
किंतु ग्रधा पादरी तन्मय ग्रनवरत वोलता ही जा रहा था।

हाथ उसका दवा सहसा ग्रोर हँसते हुए लडके ने कहा,
"वस करो ! ग्रब सब जा चुके हैं !—चलें हम भी।'
पादरी रुक गया, उसने मौन हो गर्दन झुकाई
ग्रौर तब,
जैसे कि चारो ग्रोर भारी भीड ही हो,
जगली जड पत्थरो से साथ उठ
"ग्रामीन !" की ग्रावाज़ ग्राई !

३३ | हस की मौत

एक तन्त्री काँपते स्वर से कही मनुहार करती,
वाटिकाएँ चमक उठती है अचानक रोशनी मे
औ' पथो पर भीड चलती।
छ सक्रिय सजग है,
एक चलती है नही तो हवा जिससे
सान्ध्य नभ मे घिरे बादल छटें-बिखरें।

अघ नभ के तले काई ढका अधा एक सोता,
और उसमें दृष्टि-रोधी नरकुलो से घिरा कोना,
जहाँ सध्या की करुण छाया लपेटे
एक घायल हस, दु सह पीर विजडित,
आह ! अनजाना, अकेला,
मृत्यु के क्षण की प्रतीक्षा कर रहा है।

शक्ति उसकी क्षीण इतनी हो गई है
देखने को वह नही आँखें उठाता
(मानवो के प्रति घृणा, या लाज उनसे, अत तक मानो निभाता)

आतशी वह वाण जो नभ का अँधेरा चीरकर के
टूटता है और उसपर चिन्गियो की ज्योतिमय बौछार करता।

फिक्र सुनने की नही उसको
कि बहती मद जल की धार कहती जा रही क्या,
पास ही जो है सिसक्ती निर्झरी वह वेदना वतला रही क्या,
आँख उसकी वद है, स्वच्छद सपने से भरा मस्तिष्क उसका,
उड रहा वह, उठ रहा ऊँचे, बहुत ऊँचे, जहा से
हारकर बादल धरा को लौट जाते।—
ओह ! दो डने, लगाकर होड कैसी,
भेदते आकाश को ऊपर उठेंगे—
  दिग्विजय की ज्यो ध्वजाएँ।
ओह ! घायल हस कैसा गीत—अतिम गीत—गाएगा
  कि सुनने को जुडेंगे देवता, देवागनाएँ ![1]

गीत अतर का, परम पावन क्षणो का,
कर्णगोचर मानवो को तो न होगा,
  हस, पर, स्वर हस का पहचान लेंगे,
और उसकी श्वेतवर्णी जाति के मृदु कठ शत शत
  प्रतिध्वनित उसकी अमर वाणी करेंगे।—

एक क्षण की देर है—बस एक क्षण की—एक क्षण की
  मुक्ति के नभ-गान का नव जन्म होने जा रहा है !

---

१ ऐसा विश्वास है कि मरने के पूव हस एक ऊची उडान भरता है एव गीत गाता है।

पख दुदुभि-सी बजाते (हो रही हरकत परों मे !)
दे रहे उसको सलामी
जो सवेरे का विधाता आ रहा है।

—इस प्रकार समाधि टूटी। एक भी पर हिल न पाया
कल्पना की वे उड़ानें वे-उड़ी थीं,
कल्पना का गीत गनगाया हुआ था,
कल्पना की रागिनी ही मद होकर,
मदतर होकर, हुई थी शान्त,
पछी मर गया था
उस अँधेरे मे जहाँ पर वह पड़ा था।

एक झाड़ी कँपी,
नरकुल इस तरह लहरा अलग हो गए सहमा
एक झोका हवा का, हल्का, चला चुपचाप आया।
मुसकराया बाग,
चमका, कालिमामय गगन के नीचे अचानक।
और तत्री कापते स्वर से रही मनुहार करती !

३४ | भूखा

खड़ा हुआ है कृषक सामने
दुख-द्रवित हैं उसके दृग,
ज़ोर-ज़ोर से सासे चलती
डगमग-डगमग करते पग।

वह अकाल पीडित है, खाने
को पाता पेडो की छाल,
घोर कालिमा मुख पर छाई
काया है केवल ककाल।

अतहीन कष्टो ने उसको
कुचल दिया, कर दिया विमूक,
उसकी आखें पथराई हैं
और हृदय उसका सौ टूक।

धीमे चलता जैसे कोई
ले पलको पर निद्रा-भार,

वह जाता उस ओर जहाँ पर
उसकी बोई हुई जुआर।

रखता है अपने खेतों के
ऊपर अपनी अपलक डीठ,
और खड़ा होकर गाता है
एक बिना स्वरवाला गीत।

"ओ जुआर के खेत, उगो तुम,
जल्दी-जल्दी पको, बढ़ो,
और जोतने, बोने, सिंचित
करने का श्रम सफल करो।

मुझे एक रोटी दो जिसकी
नाप न मुझसे हो पाए,
मुझे एक रोटी दो जिससे
सारी पृथ्वी ढक जाए!

सब की सब मैं खा जाऊँगा,
क्यों छोड़ूँगा कण भर भी,
नहीं भूख ने छोड़ी ममता
बीबी औ' बच्चों पर भी!"

३५ | बे-कटा खेत

बीत चला है पतझड, चिडियाँ चली गई हैं
गर्म प्रदेशो को, वन की डालें नगी हैं,
पडा हुआ मैदान सपाट, खडी है अब भी
एक खेत मे फसल, अकेले एक खेत मे।
इसे देखकर मैं उदास होता,
विचार मे पड जाता हूँ —

निश्चय बालें इसकी आपस मे काना-फूसी करती हैं
"यह पतझड की हवा, कि इसके ककश स्वर से कान पक गए।"
"ऊब गई मैं बार-बार धरती के ऊपर शीश झुकाते
और गिराते और मिलाते मिट्टी मे मोती से दाने।"
"ये घोडे जगली हमे भारी टापो से खूद कुचलकर चल देते हैं।"
"ये खरगोश चलाते अपने पजे हम पर।"
"होश उडानेवाले सर्द हवा के झटके।"
"जो भी पक्षी आता अपनी चोच मारकर दाने चार गिरा लेता है।"
"भला आदमी कहाँ रह गया?"
"बात हुई क्या?"
"निकली सबसे बुरी फसल क्या इसी खेत की?"

"उगी, बढी, दाने लाई—क्या कमी रह गई ?"
"ऐसी कोई बात नही है !"
"सबसे अच्छी फसल हमी है।"
"कितने पहले हम बालें भर गइ, झुक गया डठल-डठल !"
"इसीलिए क्या उसने धरती जोती-बोई
उपज हमारी पतझड की झझा मे बिखरे ?"

इन प्रश्नो का दर्द-भरा उत्तर लेकर के
गर्द-भरे दो झोके आए
"काम तुम्हारा करनेवाला चला गया अब।
खेत जोतते-बोते उसने कब जाना था,
वक्त काटने का आएगा, वह न रहेगा।
अब वह खा-पी नही सकेगा—उल्टे, कीडे
उसकी छाती को खा खाकर चलनी करते,
वह मुँह खोल नही पाता है।
और बनी थी जिन हाथो से क्यारा क्यारी
अब वे सूख हुए हैं लक्डी।"

"आँखो पर ऐसी झिल्ली है, देख न पाती।
उसकी वाणी, जो उसके अवसादो को मुखरित करती थी,
मूक हो गई।
जो हलवाहा हल का हत्था कसकर थामे
खेत जोतते सोचा करता,
और सोचते जोता करता,
दबा हुआ मिट्टी में सडता !"

३६ | प्रेयसी से

प्रेयसि, क्या तुम नही देखती ?
जो है चारो ओर हमारे
वह केवल परछाईं,
प्रतिबिंबित छाया है,
उन चीज़ो की जिनको
आंखें नही देखती।

प्रेयसि, क्या तुम नही सुन रही ?
धरती पर जो ध्वनियाँ होती,
वे हैं केवल अस्फुट-खंडित
प्रतिध्वनियाँ उस विजय गीत की
दूर कही जो गाया जाता,
जिसको कान नही सुन पाते।

प्रेयसि, क्या महसूस न करती ?
एक हमारा सुख ऐसा है

जिसका अन्त नही हो सकता,
जो कि प्रणय का मूक निवेदन,
जो प्रणयी का मौन समर्पण,
जिसको शब्द नही कह पाते ।

३७ | मिट्टी

ईश्वर ने मिट्टी से मेरा निर्माण किया
पर मुक्त नही मिट्टी से उसने किया मुझे,
घाटी से चोटी तक जो कुछ इस धरती पर
सब मेरा ही है रूप दूसरा, प्रिय मेरा।

जब दूर सडक तक मेरी आँखें जाती है
मुझको लगता है, उसके पत्थर-पत्थर को,
उसपर चलते पावो, उसपर चक्कर खाते
पहियो को मैंने बहुत निकट से जाना है,
जैसे वे सब मेरी मिट्टी के अदर हो।

जब किसी सलिल की धारा का कलकल-छलछल
मेरे कानो मे पडता है मुझको लगता,
यह पृथ्वी का रस लाई है,
जो मेरे वासती उपवन को
जीवन-यौवनदायी है।

३८ | लोरी—वृद्ध के लिए

टूट गई है नींद,
अभी दिन हुआ नहीं है,
चारों ओर अँधेरा है, कुहरा छाया है,
लेकर एक जम्हाई कहता हूँ कि "उठू क्या ?"
नहीं ! गुदगुदे बिस्तर में मैं
पड़ा-पड़ा आराम करूँगा।
ओ प्यारी माँ, एक सुहानी
लोरी गा दे, मुझे सुला दे।
बीत गए हैं दिन यौवन के,
सुख की सिर्फ कहानी बाकी,
लेकिन मेरे स्वप्न सलोने
एक बार फिर मुझे पालने में लाए हैं।
माँ तो लौट नहीं सकती है,
इसी लिए मैं खुद ही गाऊँ,
दुखिया मन को बहलाने को
मीठी लोरी एक सुनाऊँ।

जब दिन भारी हो जाता है,
नींद उसे हल्का करती, पीड़ा हरती है,
कटुताएँ विस्मृत होती हैं,
मैं फिर बच्चा बन जाता हूँ—
नील गगन के नीचे
फूलों को चुनता हूँ,
दूर कहीं कोई मीठी लोरी गाती है,
मैं सुनता हूँ।

उस नीली निर्मल धरती पर
सब कुछ शांत-मनोरम लगता,
सब सपने सोने के होते,
श्रौ' सबपर आशीष बरसता।
एक शांति की, सुख की, छाया
पास चली धीरे से आती,
धीमे-धीमे तन-मन हल्का करनेवाली
लोरी गाती।

अब जगने की वेला आकर
बिस्तर पर डैने फड़काती,
दिन धुधला-सा, सूना-सूना,
लुप्त हुई सपनों की पाती,
जीवन की चिंताएँ फिरती
कर्कश हाय-पुकार मचाती,
फिर भी कोई धीमे धीमे
लोरी गाती।

३६ | मैं क्यों आया ?

मैं आया हूँ इस दुनिया में जिसमें देखूं सूर्य-प्रकाश,
नीलम का नभ नव द्युतिमान,
मैं आया हूँ इस दुनिया में जिसमें देखूं सूर्य-प्रकाश,
हिम शिखरों पर किरण वितान!

मैं आया हूँ इस दुनिया में, देखूं सागर का विस्तार,
घाटी में फूलों का राज,
जब रातों को आंख उठाऊँ देखूं तारों का संसार,
अंबर का रत्नों का ताज!

मैंने जीत लिया विस्मृति को झंकृत कर वीणा का तार,
गा अपने सपनों का राग,
शुद्ध हृदय मेरा कुंदन-सा, भस्म हुए सब दोष-विकार,
मेरे अंतर में है आग।

मैं मधुमय इसलिए कि पीड़ा से निकली है मेरी तान,
देखूं मुझ-सा प्रिय है कौन ?
मुझसे ज्यादा किसकी पीड़ा ? मुझसे बढ़कर किसका गान ?

सारा पृथ्वी तल है मौन।

मैं आया हूँ इस दुनिया में जिसमें देखूं सूर्य-प्रकाश,
अगर दिवस का हो अवसान
मौत फँसा भी ले यदि मुझको फैलाकर अपना भुजपाश,
गाऊँगा किरणों का गान!

४० | जीवन का अर्थ

ने पूछा मलयानिल से जो अनियन्त्रित बहता है,
"कसे जीवन मे पा सकता मैं चिर यौवन का आनद ?"
ौर सुनो वह मुक्त समीरण कानो म क्या कहता है
"रहा करो तुम, रहा करो तुम, जैसे मैं बहता स्वच्छद।"

ने कहा महासागर से जिसका मिलता वार न पार,
"जीवन मे उच्चादर्शों के पाने का बतलाओ राज।"
हरो मे छहरा कर बोला अगम शक्ति का वह आगार,
"निभय होकर नित्य उठाओ अपने अतर की आवाज।"

ने पूछा रवि किरणो से जिनसे रोशन था आकाश,
"कैसे मैं पा मकना वह द्युति जिससे होता स्वण विहान ?"
करणें मौन रही पर मुझको हुआ अचानक यह आभास,
मानो उनका एक सँदेसा, "जल-जलकर हो ज्योनिर्मान।"

४१ | नीरवता

छा रही है रूस के मुख पर थकावट की उदासी,
छिपे, गहरे घाव की पीडा, नही जो व्यक्त होती,
एक ऐसी वेदना, जो मूक, सीमाहीन है, आशारहित है—
शीत नीलाकाश ऊपर, और नीचे दूरियो की धुध फैली।

प्रात आओ औ' पहाडी पर खडे हो—
झलमलाती नदी से हल्का कुहासा उठ रहा है,
शात, घन वनप्रात की छाया धरा घेरे पडी है,—
दु ख से जकडा हुआ दिल है, नही सुख की निशानी।

हिल रहे हैं नही नरकुल और मुँह बाधे सेवार खडी हुई है,
एक चुप्पी गगन मे मँडला रही है,
एक गूगापन धरा पर जड पडा है,
और कितनी दूर तक फैले हुए है चरागाह, नही पता है,
और सब पर एक नि स्वन थकन बैठी ऊँघती है।

दिन ढले आओ—किरण की लाल लहरें
निम्न, शीतल घाटियो मे बसे गाँवो को डुबाती,

झुकी, घन वनराजि को अद्‌भुत बनाती,
मौन उनका और गहराती कि लगता,
दु:ख से जकडा हुआ दिल है, नही सुख की निशानी।

या कि लगता,
एक प्रेमी ने ललककर प्रेयसी से प्यार माँगा
किंतु पीडा का करुण उपहार पाया।
हृदय कर दे क्षमा, लेकिन हृदय मुर्दा हो गया है,
और अपनी मौत पर खुद रो रहा है,
जानता यह भी नही क्यो रो रहा है।

४२ | प्यार नहीं चाहिए

काश मेरी पीर की गभीरता तुम जान पातीं,
प्यार पाकर प्यार से अब अरुचि मुझको हो गई है।
रात आधी, एक बिस्तर, एक तकिया और हम दो,
किंतु मरा हृदय एकाकी—असग पडा हुआ था।
तुम इसे किस भांति समझोगी, किया मैंने वहाना—
विस्मरण की कामना मे मधुर निद्रा मे पडा हूँ ?
जान, लेकिन, मैं चुका था प्यार तो इस प्यार के अदर नही है,
मुंदी, निद्राहीन मेरी आख पर यह भेद सारा
बहुत जल्दी खुल गया था।
प्यार है अज्ञात भाग्य-मरीचिका जो
नई, गहरी वेदनाओ के मरुस्थल मे भ्रमाती,
वाध्य करती, सपदा दवी हमारे पास जो
चुपचाप हम वलिदान कर दें।
प्यार की मैत्री नही थिर,
वस्तुत वह दीर्घजीवी शत्रु ही है।
प्रेयसी, प्रच्छन्न पीडा से हृदय मेरा न वेधो,
(कम न भोगा, सहा मैंने।)

बात पिछली भूल जाओ, और सीखो फिर न तुम
आँसू बहाना, प्यार करना।
प्यार जब करता नहीं मैं
तब किसी का प्यार पाने से कहीं यह अधिक सुखकर है
कि विस्मृत कर दिया जाए मुझे बिल्कुल, सुनयने !

वलेरी ब्रयुसोव

४३ | सगतराश

'सगतराश, सगतराश, लिए हथौडा-छेनी हाथ
बना रहा तू क्या औ' किसके लिए बता मुझको तत्काल?"
"ठीक मुझे है करना काम, करो न झगडा मेरे साथ,
इन पाषाणो से बनने को है बदीघर की दीवाल।"

'सगतराश, सगतराश, बतला तो दे इतनी बात,
किसके चारो ओर घिरेगी इस कारा की छाया क्रूर?"
"तुम निश्चित रहो धनवान, निभय रहे तुम्हारे भ्रात,
नही कभी तुम हो सकते हो चोरी करने को मजबूर।"

"सगतराश, सगतराश, कौन बहाएगा अविराम
रात-रात भर जाग वहा पर नयनो से आसू की धार?"
"सभवत मेरा ही भ्रात, या जो मुझ-सा करता काम,
हम अपने कधो पर लेते ऐसे ही कर्मो का भार।"

"सगतराश सगतराश, क्या न जायगा उसका ध्यान
उन लोगो पर किया जिन्होने इस कैदीघर का निर्माण?"
"नही जठर औ' उसकी ज्वाल हँसी-दिल्लगी के सामान,
तुम रहने दो कुछ कहने को, हमको है इन सबका ज्ञान।"

४४ | आशीष

नयनो मे जो तेज तुम्हारे, वह युग-युग तक बना रहे !
क्योकि उसी से देखी मेरे पागलपन ने अपनी राह।
अधरो पर जो हास तुम्हारे, वह युग-युग तक बना रहे !
क्योकि उसी मे पाया मैंने मादक मधु का सिंधु अथाह।

चुबन मे जो गरल तुम्हारे वह युग-युग तक बना रहे !
क्योकि उसी से नष्ट हुईं सब चिंताएँ, सब शोक-विषाद।
आलिंगन मे जो पनापन, वह युग युग तक बना रहे !
क्योकि उसी ने काट हटा दो बीते दिन की दुखद याद।

और प्रणय मे है जो ज्वाला, वह युग-युग तक बनी रहे !
क्योकि अतीत जलाया मैंने अपना उसमे ही सुख मान।
और हृदय में है जो छाया, वह युग युग तक बनी रहे !
क्योकि उसी के नीचे आकर मिला मुझे तापो से त्राण।

तुममे जो कुछ, जो कुछ तुममे, वह युग युग तक बना रहे !
चाहे वह वेदना, व्यथा दे, चाहे युग-युग करे अशात,
क्योकि स्वर्ग पा गया तुम्हारे आँचल का ही छोर गहे,
जिससे यदि तुम वचित कर दो, मैं हूँ केवल जड-उद्भ्रात।

४५ | मैं और तुम

मेरा तो ससार अलग है, लो मैं कहता हूँ ललकार,
नही तुम्हारी दुनिया मुझको पाएगी अपने अनुमार,
वीणा की झकार सकेगी कभी नही मेरा मन जीत,
मुझको तो केवल भाता है जगल का निजन सगीत।

बैठ सजे कमरो के अन्दर अपने गीत नही गाता,
फैशन के सेवक नर-नारी दल से मेरा क्या नाता,
मैं अपना सगीत सुनाता हूँ वन के बाशिंदो को,
जल-झरनो को, नभ मण्डल के बादल और परिंदो को।

मैं प्रेमी हूँ, किन्तु नही जो पग पग पर सकुचाता है,
जो तारो की ओर दखता अपने मे खो जाता है,
मेरा प्यार मरुस्थल का सा प्यासा जब जल पाता है,
उसके ऊपर टूट-झपटकर अपनी प्यास बुझाता है।

ऐसी मेरी मृत्यु सेज को पा न सकेगा जिब्राईल[1]—
एक तरफ है खडा पादरी, और दूसरी ओर वकील,

---

१ ईसाई धम के अनुसार स्वग का एक फरिश्ता।

एक भयकर घाटी मे जा छोड़ूगा मैं अपना प्राण,
पाऊँगा वन की लतिकाओ मे अपना अतिम परिधान !

जाऊँगा मैं नही स्वर्ग मे जिसका ग्रन्थो मे वर्णन,
जिसके पथ पर छाया रहता सुदर, निमल, नील गगन,
मैं जाऊँगा वहाँ जहा पर वेश्यागामी, चोर, दलाल,
मुझे देखकर साथ कहगे, "भाई, स्वागत, इस्तकवाल !"

४५ | मैं और तुम

मेरा तो संसार अलग है, लो मैं कहता हूँ ललकार,
नहीं तुम्हारी दुनिया मुझको पाएगी अपने अनुसार,
वीणा की झंकार सकेगी कभी नहीं मेरा मन जीत,
मुझको तो केवल भाता है जंगल का निर्जन संगीत।

बैठ सजे कमरों के अन्दर अपने गीत नहीं गाता,
फैशन के सेवक नर-नारी दल से मेरा क्या नाता,
मैं अपना संगीत सुनाता हूँ वन के वाशिंदों को,
जल-झरनों को, नभ मण्डल के बादल और परिंदों को।

मैं प्रेमी हूँ, किन्तु नहीं जो पग पग पर सकुचाता है,
जो तारों की ओर देखता अपने में खो जाता है,
मेरा प्यार मरुस्थल का सा प्यासा जब जल पाता है,
उसके ऊपर टूट-झपटकर अपनी प्यास बुझाता है।

ऐसी मेरी मृत्यु सेज को पा न सकेगा जिब्राईल[1]—
एक तरफ है खड़ा पादरी, और दूसरी ओर वकील,

---

१ ईसाई धर्म के अनुसार स्वर्ग का एक फरिश्ता।

एक भयकर घाटी मे जा छोडूंगा मैं अपना प्राण,
पाऊँगा वन की लतिकाओ में अपना अतिम परिधान!

जाऊँगा मैं नही स्वर्ग मे जिसका ग्रन्थो मे वर्णन,
जिसके पथ पर छाया रहता सुदर, निमल, नील गगन,
मैं जाऊँगा वहा जहा पर वेश्यागामी, चोर, दलाल,
मुझे देखकर साथ कहेगे, "भाई, स्वागत, इस्तकबाल!"

।

४६ | दो गुलाब

अदन, आदि उपवन, के अति पावन फाटक पर
दो गुलाब के फूल खिले हैं
मुस्कानो से सुरभि लुटाते !
यह गुलाब तो मनोकामना का प्रतीक है,
मनोकामना धरती माता की सतति है।

रग एक की पखुरियो का हल्का-हल्का—
जैसे कोई भोली बाला
पडी प्रेम मे, लाज-गडी हो।
रग एक का गहरा गहरा—
जैसे कोई नवयौवन मे
आग प्रेम की दवा न पाए,
लपट उठाए, दहता जाए !

औ' दोनो ही
अदन, आदि उपवन, के पावन ज्ञान द्वार पर
खिले हुए हैं।

क्या परमेश्वर की मशा है
मनोकामना की ज्वाला का
यह रहस्य ही
उनका भी रहस्य वतलाए ।

४७ | आशा

सभी बिका-सा, सब कुछ वंचित, सभी लुटा-सा,
महा मृत्यु के काले डैनों की थपेड़ मानो खाया सा,
जग सारा कुछ विषाद का ग्रास बना सा,
क्यों प्रकाश की एक रेख फिर भी खिंचती है ?

दिन में किसी अदेखे, अनजाने मधुवन की
मंजरियों की गंध नगर पर छा जाती है,
और ग्रीष्म के नभ गगन में नए-नए नक्षत्र उदय हो
नए विभा-कण बरसाते हैं।

सारे गंदे गिरे मकानों के अंदर कुछ
नया करिश्मा होने को है,
नहीं जानता या कोई क्या आनेवाला,
फिर भी वर्षों ने थे इसके ही पथ जोहे।

४८ | मधुऋतु के पूर्व

मधुऋतु आने के पहले दिन ऐसे होते
ढके बर्फ से खेत शात सोते रहते है,
पत्रहीन तरुओ मे एक मधुर धुन जगती,
हवा सुहानी लगती है, मस्तानी लगती।

अचरज होता, देह अचानक हल्की लगती,
अपना घर भी अपना सा मुश्किल से लगता,
गीत पुराना, जिस समझकर मामूली-सा
हमने छोड दिया था, हम फिर गाने लगते,
जसे हो वह नया तराना।

४६ | प्रार्थना

तुम अनजाने दूर देश मे,
फिर भी तुमको रही पुकार,
नभ-मडल भी तो चलता है
तारक दल का ले आधार।

ओ अनजाने, करो शीघ्र ही
मेरी ओर कृपा की कोर,
मेरे दिन पर शासन करता
दानव अत्याचारी घोर।

दैत्य कदरा मे बैठा है
तजकर न्याय-दया की नीति,
खड्ग-हस्त है, उठे न मेरे
प्राणो से विद्रोही गीत।

मेरा शीश झुकाए रहते
निशिदिन उसके ताडक त्रास,

जिसमे मुझको याद न आए
गए दिनो का गर्वित हास।

दूर देश के प्रियतम, सुन लो
मेरे अंतर का उच्छ्वास,
'तुम्हे विदित मेरा दुख' जिसमे
हो मेरा अंतिम विश्वास।

५० | सिपाही की मन स्थिति

(१)

देख चुका हूँ बहुत बार मैं विरह वेदना का मेला,
दुखियों ने भर आहें जैसे दुख की रातों को झेला,
नही समय का पहिया रुकता इतजार की घडियों पर,
बिछुडी हुई भुजाएँ मिलती, मिलते बिछुडे हुए अधर !
मैं निशि मे सुख से सोता था जब मुर्गा चिल्लाता था,
जब दुखिया अपने कधे पर दुख का बोझ उठाता था,
रोकर लाल हुई आखें जब कोस रही थी अपना भाग,
औ' नारी के रोदन से मिल गूज रहा था कवि का राग !

(२)

निशा मिलन मे किसने सोचा बिछुडन वेला आएगी,
निममता के साथ बिदा का परवाना दिखलाएगी,
और करेगी मुर्गे की ध्वनि जिस दिशि चलने का सकेत,
जब ऊषा अनुरजित होगे गिरि, बन, गाव, नगर, घर, खेत।
धूमिल नभ म जब पूरब की फट रही होगी ज्वाला,
घूम घूम कर गाय चराता गाता होगा जब ग्वाला,

कोई दूर कही जाने की करता होगा तैयारी,
आँखें डबडब होती होगी, होता होगा स्वर भारी।

(३)

नही चाहिए मुझे चाँदनी के कल्पित कोमल तागे,
झोपडियो मे चलनेवाले चर्खे-तक्ले के धागे
से ही मैं तो बुन सकता हूँ अपने मतलब की चादर,
अपर-अपूरब को ले उडना मेरी अभिरुचि के बाहर।
जीवन के ताने-बाने मे क्या नवीनता मिलती है,
नई कली सौ बरस पुरानी कलियो सी ही खिलती है,
लौट पुरातन फिर-फिर आता नूतन का भ्रम उपजाता,
नही अपरिचित कुछ भी जग में, इसका ही जग सुख पाता।

(४)

मुझको चिंता नही कि झलमल रेशम के अवगुठन में,
ऐसी द्युति से संयुत, जिसकी समता केवल कुदन में,
छैल-छबीली मिट्टी की अलबेली गुडिया आएगी,
और एक फूलो की दुनिया चारो ओर बसाएगी।
चाहे हम क्यो काल करा दे हमको होनी का दर्शन ?
फूल नारि का, लोहा नर का, आदिकाल से आकर्षण,
परख हमारी वहाँ जहाँ पर वज्रो से रण ठनता है,
वीरो की भौहो के ऊपर भूत-भविष्यत बनता है।

५१ | उजड़ी बस्ती

लुप्त हो गया, बता कहाँ तू, ओ मेरे बचपन के घर!
जिसको गिरि ने स्थान दिया था अपनी गोदी मे सुलकर,
जिसके आगे खिला हुआ था नीलम से फूलो का खेत,
जिसके इधर-उधर फैली थी पीली और सुनहली रेत।
लुप्त हो गया, बता कहाँ तू, ओ मेरे बचपन के घर!

पास नदी थी और पार से मुर्गे की ध्वनि आती थी,
वही किसी ग्वाले की गोरी छोरी गाय चराती थी।
लहरो से क्रीडा करने को दिन को किरणे आती थी,
रातो को जल की धारा मे तारक पक्ति नहाती थी।
पास नदी थी और पार से मुर्गे की ध्वनि आती थी!

प्रात काल उधर पूरब से सूरज नित्य निकलता था,
और गाव के ऊपर होता पश्चिम दिशि मे ढलता था,
और उठा करती थी आँधी उस कोने के जगल से,
और हुआ करती थी वर्षा उस घाटी के बादल से।
प्रात काल उधर पूरब से सूरज नित्य निकलता था!

किंतु समय के प्रलय-घनो ने कब इस बस्ती को घेरा,
कब मूसलधारा जल बरसा, ढहा-बहा वह घर मेरा,
हो बर्बाद गई कब मेरे नीले फूलो की खेती,
चली गई कब रूठ यहा से कचन चमकीली रेती!
किंतु समय के प्रलय-घनो ने कब इस बस्ती को घेरा!

५२ | साध्य शाति

साध्य शाति बागो से छिपकर आ जाती है,
खिडकी के शीशो पर आती चमक अचानक,
सूर्यास्त ऐसा लगता है जैसे कोई
स्वर्ण हस उतराता सर मे स्वप्न देखता।

स्वर्ण साँझ की स्वर्ण शाति का शत अभिवादन!
छाया, देखो, दूर कहाँ तक चली गई है!
छोटी छोटी चिडियो के दल छत पर उडकर
सांध्य गीत से साध्य जगत का स्वागत करते।

बागो के उस पार दूर के चरागाह मे
घिरी हुई फूलो की झाडी से चौतरफा
एक श्वेत-वस्त्रा सुकुमारी बैठी गाती
एक सुरीला गीत हवा पर जो लहराता।

खेतो से ठडक फैलानेवाली कुहरे
की झीनी चादर धीरे-धीरे आती है—
यहीं प्रतीक्षा मे मेरी ड्योढी के ऊपर
और गुलाबी गालोंवाली मुसकाती है!

५३ | पतझड की शाम

सर के जल के अरुणिम तल पर
पीले पत्ते नाच रहे है गोलाई मे,
जैसे एक तितलियो का दल
घूम रहा हो पुष्प-गुच्छ पर होड लगाकर।

इस नीरव पियराती घाटी
मे यह न्यारी सध्या कितनी प्यारी लगती !
मस्त हवाओ ने यौवन की
अठखेली मे नग्न कर दिया है पेडो को।

घाटी ठडी, घट मे ठडक,
सध्या का बादल है जैसे झुड भेड का।
ऊँघ रहा बगिया का फाटक
औ' उसकी घटियाँ मौन है, सोई-सी है।

मेरा तन, मेरा मन भी है
शात इस तरह जैसे पहले कभी नहीं था।

जी करता,
तट-तरु हो जाऊँ,
जिसकी लबी, लचकीली औ' सघन टहनियाँ
झुककर नीचे बहती धारा को सहलातीं।

ध्यान मग्न चदा-सा हूँ मैं,
दूब कुतरता पड़ा मौज से रह सकता हूँ।
औ' उदार उल्लास, जाग मेरे अतर मे,
प्यार करूँ सब को, न किसी से कुछ भी चाहूँ!

५४ | ईंट ढोनेवाला

सध्या को जब काम खतम कर अपने घर को आता हूँ
श्रमकण से भीगे कपडे को तन पर चिपका पाता हूँ,
अधकार मे मेरे कपडे, लेकिन, स्वर पा जाते हैं,
लाल ईंट का लाल गीत वे कठ खोलकर गाते हैं।

गाते है, कैसे नीचे से ऊपर, उसके भी ऊपर
मैं चढता जाता हूँ अपना लाल बोझ सिर पर धरकर,
और पहुँचता चढते चढते मैं सबसे ऊँची छत पर,
जिसके ऊपर तना हुआ है नग्न, घना नीला अबर।

कैसे चारो ओर क्षितिज पर आँखें फिर घूमा करती,
जहा हवा सिहरी कुहरे से है ठडी आहे भरती,
जहाँ उपा भी दिखलाई देती है अपना भार लिए—
लाल लाल ईंटो का अपने मस्तक पर ससार लिए।

सध्या को जब काम खतम कर अपने घर को आता हूँ
श्रमकण से भीगे कपडे को तन पर चिपका पाता हूँ,
अधकार मे मेरे कपडे लेकिन स्वर पा जाते हैं,
लाल ईंट का लाल गीत वे कठ खोलकर गाते हैं।

५४ | रूसी गाँव

देखता हूँ दूर तक मैदान फैले,
मद बहती है हवाएँ,
गाव एकाकी घिरा सुनसान से है
कर रहा है सायँ सायँ यँ

झोपडे कुछ कुगढ लकडी के खडे है
अधगिरे से रास्ते पर,
ज्यो खडी हो बूढिया सुध बुध विहीना,
दत-हीना, देह जर्जर।

जोड छत के खुल गए है, पड रही हैं
जा-ब जा उनमे दरारें,
रात-दिन चलती हवाएँ आह भरती,
धूलि की आती फुहारें।

आँख-जैसी खिडकियो से देखते हैं
झोपडे दूरी क्षितिज तक,

और आता है नज़र फैलाव केवल
घास मिट्टी का भयानक।

सूय ऊपर, भूमि नीचे, बीच टूटी
जिंदगी के चार टुकड़े,
दिवस आते, दिवस जाते पर किसी के
हेतु मुसकाते न मुखड़े।

दिन गुज़रते, मास कटता, साल हटता,
एक सा हर प्रात होता,
फसल उगती, फसल कटती, जिंदगी का
म्लान मुख कोई न धोता।

हवा भारी हो गई, ऊमस भरी,
आसार यह तूफ़ान का है,
अब समय घन के सघन उत्थान का है,
वज्र के अभियान का है।

एक गहरी लाल, पागल-सी लपट उठ
बादलों को चीर देगी,
एक झाड़ी ताज सी गिरि पर लगी जो
टूट सागर में धँसेगी।

जलेवसाद ब्लोय

५६ | गिद्ध

ऊपर एक गिद्ध चक्कर पर चक्कर देता,
नीचे फैले खेत निदारे,
चरागाह मे सूनापन है,
एक झोपडे मे बैठी माता रोती है
"मेरे बच्चे, मेरी छाती पी, रोटी खा,
और बडा हो,
क्योकि तुझे आज्ञा का पालन करना होगा,
क्योकि तुझे विपदाओ का बोझा कधो पर
धरना होगा, ढोना होगा।"

सदियाँ बीती। तुमुल नाद युद्धो का गूँजा।
हुईं क्रातियाँ। जले नगर-घर।
लेकिन मेरे देश पुरातन,
तेरा मुखडा पहले जैसा
रोदन से आरक्त बना है।
कब तक झोपडियो से माताओ का क्रदन उठा करेगा ?
कब तक उनके ऊपर भूखा गिद्ध लालची चक्कर देगा ?

५७ | नई शक्ति

दुख की मारी, दर्द-सताई इस दुनिया मे,
जिसपर छाया बहुत दिनो से अधकार है,
सग्रामो के तुमुल नाद के प्रत्युत्तर मे,
नई शक्ति ने जन्म लिया है, और गगन जगमगा उठा है।

उसके सिर के राजमुकुट से फूटी किरने
तुरत जगत के घन अँधियारे को भेदेगी,
और समर से ऊबे सैनिक उसके जगमग
सिंहासन को जनता के अदर खोजेंगे।

हम कि जिन्होने आँधी, अधड, अधकार की
रातें ही केवल जानी थी, स्वण किरण मे
स्नान करेंगे औ' यह दुनिया गद गुबार
पुराना अपना झाड झूडकर नीलम की साडी पहनेगी।

५८ | भ्रम-विमुक्त

हँसे हैं नादान मुझपर
क्योंकि मैंने
नौजवानी मे लिखा था गीत ऐसा
जिसे सुनकर के निराशा म
मधुर आशा जगी थी,
और जो था अंतहीन सफर
मिला था लक्ष्य उसका।

जिसे मैंने दुरदुराया
और ठुकराया कभी था,
वही दुनिया
अजनबी मेरे लिए बन
है खडी प्रतिकूल मेरे।
चोट जो मैंने कभी दी थी
मुझी पर लौटती है,
औ' कसौटी पर नई
होता नही साबित खरा मैं।

छोड दो मुझको,
मुझे मालूम है मरना मुझे है,
करुण मेरी कल्पनाओ को कुचल दो,
किंतु है विश्वास मुझको यह
कि मेरी मधुर दुनिया,
मैं रहूँ, न रहूँ,
सभी अन्याय मानव के सहन कर भी जिएगी
और होगी विजयिनी भी।

छोड मधुशाला न जाऊँगा कही मैं,
पिए हूँ, पर क्यो तुम्हे आश्चय इसपर ?
आज मेरी खुशी बैठी हुई रथ पर
उडी जाती है
चँदीले धुंधलके में !
उडी जाती चढी रथ पर,
चक्र जिसके गडे जाते है
समय की लीक की गहराइयो मे,
बफ से जो ढक गई हैं,
और घोडो के खुरो से
उठ चँदीला धुंधलका बस
प्राण मन पर छा रहा है।

अँधेरे मे छिटकती चिन्गारिया है
जो निशा की कालिमा पर मुसकराती,

दूर—मुझसे दूर—मेरी खुशी के रथ की
सुनहरी घंटियों का स्वर सुनाई दे रहा है,
आँख से ओझल हुआ जो।

और सारी रात
रथ की, रास की घन घंटियां बजती रही है,
किन्तु, ओ परित्यक्त मेरी आत्मा! तू
थकी, हारी हुई,
छाई हुई है तुझपर खुमारी।

५६ | हमारी कूच

इन्कलाब के पैरो से तुम रौदो तो मैदानो को,
गर्वित शृ ग शिखर-सी रक्खो पेशानी को, शानो को,
एक नया सैलाब उठाने हम दुनिया मे आते हैं,
देखो कैसे इसमे जग के सब घर-नगर नहाते हैं !

रग-बिरगी सुबह, शाम, दिन, रातो की घडिया जाती,
एक दूसरे से जुड जुडकर वर्षो की कडिया जाती,
गति ही एक हमारी देवी, उसके उग्र उपासक हम,
सीने मे रणभेरी बजती, हम फिर कैसे सकते थम !

हम कुदन के ढले हमारी आभा-विभा निराली है,
हमे नही डर इसका हम पर आग बरसने वाली है,
नही हमारे गीतो से मजबूत कही हथियार बने,
दिशा-दिशा से गुजित नारे हम पर बनकर ढाल तने !

हिम से ढकी हुई धरती के ऊपर फिर से घास उगी,
जगकर प्रकृति गई थी सो जो, सो लेने पर पुन जगी,

इद्रचाप चमका सतरगा, गगा चमरी अबर की,
साल चौकडी मार चले पर टिगी लगन कब अतर की।

तारो का मत करो भरोसा, वे तो हैं जड-भीत सभी,
उनके बिना नही रुकने का शाति कठ का गीत कभी,
ज्योतिपुत्र हम ज्योतिमय नभ से केवल इतना चाहे,
हमें रहे आमन्त्रित करती नव नक्षत्रो की राहें।

मस्ती का मधु पिम्रो, लगाम्रो पीकर जोशीले नारे,
खून जवानी का नस नस में दौडे श्रौ' लहरें मारे,
चढ़ें हौसले आसमान पर श्रौ' जमीन पर बढें कदम,
छाती की धडकन मे बजता लौह दमामा हो हरदम।

६० | निशा और उषा

उषा काल मे कहा डाल ने जब सहला चिडियो का पर,
जागो, जागो, आने को है गाने की बेला सत्वर,
फटक मेंह भीगे पखो को वे नीडो से निकल पडी,
मलय पवन पर कलिका झूली, तन से जल की बूद झडी।

हुई निशा मे सहसा वर्षा, जल की ऐसी बाढ चली,
लगा, नही यह रहने देगी एक पेड, फल, फूल, कली,
युग-युग के आंसू सचित कर मैने जिसको सीचा था
उसे बहा क्या ले जाएगी एक जलधि की लहर बली!
दुख की घडियो मे यह बगिया मेरे मन में आई थी,
दुख की घडियो मे ही मने इसकी जड बिठलाई थी,
दुख की घडियो ने ही इसको उगते बढते देखा था,
कल ही पहले पहल निशा मे इसकी छवि मुसकाई थी!
सारी रात प्रभजन मेरी खिडकी को खटकाता था,
सारी रात प्रभजन मेरे सपनो को डरपाता था,
द्वार खुला, घुस मलय पवन का एक सरस झोका बोला—
वृष्टि न थी, तेरे आंसू का कोई मोल चुकाता था!

उषा यान मे जगकर, निशि के दुख-दु स्वप्नो को भूली,
गधवाह के मधुप्रवाह मे कलियाँ पडती थी फूली,
फूल खिले पडते थे अपनी खोल पखुरियों-सी पलकें,
झूम रहे थे तरुवर, लतिका की लहराती थीं अलकें।

६१ | कमरा

लाल ईंट का बना हुआ है कमरा मेरा,
छोटा है, संदूक जिस तरह,
इससे छोटी कब्र मिलेगी, फिर कमरे की
भला शिकायत करूँ किस तरह।

यहा दुबारा मैं आया हूँ, जैसे कोई
लाया मुझको यहा खीचकर,
दीवारो पर चिपका है कागज मटमैला,
दरवाजा करता है चर-मर।

कुडी खोली नही कि सहसा प्रकट हुई तुम,
लट मेरा माथा सहलाती,
कैसा अद्भुत लगता है फिर फिर अधरो को
पाटल पखुरियाँ छू जाती।

वस्त्र तुम्हारे सर-सर करते जैसे करती
बर्फ गिराती सर्द हवाएँ,

करता हूँ सौ बार तुम्हारा स्वागत, सुदरि,
देता हूँ सौ बार दुआएँ।

निष्कलक तुम नही, व्यर्थ इसपर पछताना,
तुम ऊँची विश्वास-नसेनी लेकर आई
और उतारी नीचे तुमने मेरी भूली जीवन पुस्तक,
जैसे किसी आलमारी से,
और फूककर उसपर बैठी धूल हटाई।

६२ | हेमलेट

शोर बद हो गया। मच पर म हाजिर हूँ,
दरवाजे के पास खडा हो सोच रहा हूँ,
दूरागत प्रतिध्वनियाँ सुनता,
मेरे जीवन मे जो कुछ घटनेवाला है।

रात अँधेरी मेरी ओर चली आती है,
शत शत नाट्य-घरो मे होती,
परम पिता, यदि सभव हो तो,
अबकी बार जहर का प्याला पडे न पीना।

दुर्निवार उद्देश्य तुम्हारा मान्य मुझे है,
म अपनी भूमिका अदा करने को तत्पर,
किंतु नया यह नाटक, मै नव अभिनेता हूँ,
एक बार मुझको अपना होकर जीने दो।

आह! जानता हूँ अको का क्रम निश्चित है,
नियत अत से बचना सभव कभी नही है,

मैं एकाकी हूँ, पाखंडी-दल रचता है ताना बाना।
(फँसना होगा!)
'अपना जीवन जीना ऐसा सरल नहीं है
जैसे खेत पार कर जाना![1]

---

१ अंतिम वाक्य एक रूसी कहावत है।

इलिया एहरेनबुग

६३ | बच्चे

प्रभु, इन सकट की घडियो मे
अपने लिए प्रार्थना करने का
दु साहस कौन करेगा ?
हम पापिष्ठो को तुम अपने क्रोधानल में
भले भस्म कर डालो,
लेकिन इन बच्चो के प्राण बचाओ !
इन बच्चो के—
जो गलियो मे, दिन की उजियाली घडियो म,
खेल खेलकर खेल युद्ध का शोर मचाते,
सध्या को घुसमुड सो जाते,
इन बच्चो के—
जो सडको पर घूम-घूम अखबार बेचते,
भीम भयकर खबरो का नारा बुलद कर,
और अचभा करते, हम क्यो
घबरा उठते उनकी भोली-भाली आखें देख-देखकर,
इन बच्चो के—
जो अपने गुड्डे-गुडियो की

मैं एकाकी हूँ, पाखंडी दल रचता है ताना बाना।
(फँसना होगा!)
[1]अपना जीवन जीना ऐसा सरल नहीं है
जैसे खेत पार कर जाना!

---

१ अन्तिम वाक्य एक रूसी कहावत है।

६३ | बच्चे

प्रभु, इन सकट की घडियो मे
अपने लिए प्रार्थना करने का
दु साहस कौन करेगा ?
हम पापिष्ठो को तुम अपने क्रोधानल मे
भले भस्म कर डालो,
लेकिन इन बच्चो के प्राण बचाओ !
इन बच्चो के—
जो गलियो मे, दिन की उजियाली घडियो मे,
खेल खेलकर खेल युद्ध का शोर मचाते,
सध्या को घुसमुड सो जाते,
इन बच्चो के—
जो सडको पर घूम-घूम अखबार बेचते,
भीम भयकर खबरो का नारा बुलद कर,
और अचभा करते, हम क्यो
घबरा उठते उनकी भोली-भाली आखें देख-देखकर,
इन बच्चो के—
जो अपने गुड्डे-गुडियो की

रक्षा करने को उनको तकियो के नीचे
लुका-छिपाकर धर लेते सोने से पहले,
जो अपने पापा के पावो की
आहट को अनका करते, और पूछते,
मा, वे कब वापस आएँगे ?—
प्रभु, इन सबके प्राण बचाओ !
हे भगवन्, बिन इन बच्चो के
जीवन सूना,
और मृत्यु की छाया हमपर।
प्रभु, तुम हमसे जीवन का आनद न छीनो,
जीवन की अतिम आशाएँ।
बच्चो का उल्लास हास जब हम न सुनेंगे
हम भूलेंगे झरनो का सगीत,
हवा म हरे वृक्ष का हरहर-मरमर,
हम भूलेंगे तेरा भी स्वर।
अगर न बच्चो की आँखो को हम देखेंगे,
हम भूलेंगे तारे है किस भाँति चमकते,
और प्रात मे कैसे उनकी पलके झपती,
हम तेरी ही आखो को बिसरा बैठेंगे।
और थका-माँदा मनुष्य यह
बच्चो के छोटे बिस्तर के पास खडा हो
कभी नही यह कह पाएगा,
"हे प्रभु, कैसी अद्भुत ज्योति यहाँ जगती है !
क्या अद्भुत आनद हृदय मे समा रहा है !"

यही हमारे अंतिम आश्वासन हैं,
हमसे इन्हें न बिलगा,
यही सीढ़ियाँ हैं वे छोटी
जिनके द्वारा बड़े-से-बड़े पापाचारी
तुझको पाकर
बन जाते हैं तेरी करुणा के अधिकारी !

६४ | चांद पर

मैंने देखा स्वप्न, चांद पर पहुंच गया हूं।
जैसे पृथ्वी की सब चीजें वहां पहुंचकर
भार-हीन हो जाती हैं वैसे ही मेरी
सारी समारी चिंताओं का मुझपर से भार हट गया।

यदि सचमुच ऐसा हो जाए औ' निश्चय ही
वजन विचारों से हट जाए, बस रह जाएं
चंद्र लोक में भाव अजाने, ख्याल हवाई,
सपने धुंधले, उड़ा करें व्यक्तित्व शून्य में,

तो यह भार-हीनता कितनी बोझिल होगी!
हुड़क उठेगी अपनी परिचित, पूत, पुरातन
धरती पर वापस आने की, पग रखने की,
चन्द्र-जनित पर झटक-झाड़कर,
अपने सुख, दुख, इच्छाओं के सहज भार को
सहज भाव से अपनाने की।

○ ○ ○

अकारादि क्रम से प्रथम पंक्ति-सूची

[1] कोष्ठकों में कविताओं की क्रम-संख्या दी गई है।